जे.एण्ड के.अकैडमी ऑफ आर्ट,कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

द्विमासिक

शीराज़ा हिन्दी

फरवरी–मार्च, 2002

प्रमुख संपादक

बलवंत ठाकुर

संपादक

श्याम लाल रैणा

जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू - 180 001

SHEERAZA Regd. No. : 28871/76 Feb.–March, 2002
(Hindi)

वर्ष : 37 अंक : 6 पूर्णांक : 155

Editor-in-Chief
BALWANT THAKUR
Editor
SHYAM LAL RAINA

❖ पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं इनसे अकैडमी या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जम्मू-कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू–180 001

Publisher : Secretary, J&K Academy of Art, Culture and Languages, Jammu-180 001

संपर्क : संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू एंड कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू।

दूरभाष : 577643, 579576

मूल्य : एक प्रति 10 रुपये ; वार्षिक : 50 रुपये

इस अंक में

संपादकीय

परिवर्तित होते समय की गति हमें किस ओर ले जा रही है? आज विश्व स्तर पर यह प्रश्न एक विराट रूप धारण किये चिन्ता का विषय बना हुआ है। बीत चुकी सदी के अन्तिम दशक और इस सदी के प्रारम्भ काल में विश्व ने जिस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में गति पकड़ी है प्रतिक्षण मानवी मानसिकता अस्थिरता के घेरे में घिरी जा रही है। विश्व को एक गांव के रूप में देखने का स्वप्न गांव शब्द की परिभाषा को ही नष्ट कर बैठा है। दुनिया को एक कमरे में समेटने की चेष्टा में एक कमरे के आकार को फैला कर ब्रह्मांड जैसा कर दिया है। आज दूर देश में सात समुद्र पर क्या हो रहा है के बारे में आम आदमी बड़ी आसानी से जानकारी प्राप्त कर सकता है किन्तु तीसरी दुनिया का साधारण आदमी अपने कमरे की ही एक छोर में क्या घट रहा है के बारे में अनविज्ञ है। आंचलिकता जैसे शब्दों में से पैदा हुआ मानसिक टकराव किसी भी देश की जाति, नस्ल, संस्कृति और भाषाई महत्व के नष्ट होने के डर की ही देन है। ब्रह्मांड में छोड़े गये उपकरणों द्वारा सब से अधिक संस्कृति और स्थानीय भाषाओं का दमन स्वभाविक है। आज मनुष्य एकाकी होता जा रहा है। ''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है'' इस उक्ति के बारे में फिर से विचार किये जाने की आवश्यकता है।

श्याम लाल रैणा

रामचरितमानस की मलयालम भूमिका

□ डॉ० आरसु

मलयालम के मशहूर कवि श्री वेण्णिक्कुलम गोपालकुरुप्प ने 'रामचरित-मानस' का अनुवाद मलयालम में किया था। 'मानस' के मलयालम अनुवाद के लिए उन्होंने एक विस्तृत भूमिका लिखी है उसका शीर्षक उन्होंने 'मानस प्रवेशिका' रखा है। कवि ने अपनी आत्मकथा 'आत्मरेखा' में एक उपशीर्षक में 'रामचरितमानस' रखा है। 'मानस' की मलयालम भूमिका का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है। तुलसी की जीवनी से कुछ अंश भी आये हैं। हिन्दी पाठकों के लिए और जीवनी के वे अंश आवश्यक नहीं होंगे इसलिए उसको छोड़ दिया हैं। मानस के महत्त्व पर कवि के निरीक्षण और अनुवाद की समस्याओं पर उनके विचार यहां प्रस्तुत हैं। **–अनुवादक**

आदि कवि की अनश्वर कृति 'रामायण' भारत का हृदय ही है। एक मनोहर मुकुट के समान पुरातन भारतीय जीवन के सारे भाव इस कृति में स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। कथा वस्तु की सर्वांगीण मधुरता, प्रतिपादन की चमत्कारचारुता, व्यक्तित्व से लबालब पात्र कुशलता और धर्मा-धर्म संघर्ष की अतिशयजनक उज्जवलता इस विश्वोत्तर ग्रंथ को सहस्त्रों प्रकाश रश्मियां विकीर्ण करने वाला दीप स्त[illegible] बना देती हैं। यह विश्व को हमारे चिरपुरातन महादेश की ओर से समर्पित एक अमूल्य सांस्कृतिक निधि है।

संस्कृत भाषा में प्रणीत वाल्मीकि रामायण का अनुकरण भारत की सारी प्रान्तीय भाषाओं में हुआ है। एक आतिशबाजी से असंख्य दीप अंतरिक्ष में बिखर जाते हैं। उसी प्रकार रामायण-कथा से कितने-कितने कथात्मक काव्य उद्‌भूत नहीं हुए हैं? रामायण के सर्वाकर्षकत्व के समर्थन के लिए इससे बढ़कर कौन-सा प्रमाण चाहिए ?

इस श्रेष्ठ काव्य को भक्त कवि-सम्राट तुलसीदास ने हिन्दी में उपलब्ध करवा दिया। भले ही कथागति में तुलसी ने वाल्मीकि ऋषि का अनुकरण किया है तथापि इस कृति को आदि काव्य का अनुवाद नहीं मान सकते।

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचितन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी. रघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति ॥

ग्रंथारम्भ में कवि ने यों गाया है। इसका अर्थ यही है न कि तुलसीदास ने आत्मसुख के लिए वेदशास्त्र पुराण सम्मत रामायण में वर्णित तथा अन्य ग्रंथों से प्राप्त सामग्रियों का संग्रह करके एक भाशा प्रबंध काव्य का निर्माण किया है। वे कथा में नवीनता लाने लायक कुछ सुधार लाए हैं। कुछ उपकथाओं को भी उन्होंने स्थान दिया है। पात्र सृष्टि में भी कुछ परिवर्तन किया है। उनके बारे में बाद में उल्लेख करूंगा।

कवि ने ग्रंथ का शीर्षक रखा है-'रामचरितमानस'। इस नामकरण का अर्थ यही है कि कवि ने मान सरोवर के रूप में रामचरित की कल्पना की है। किन्तु 'तुलसीदास रामायण' के रूप में इस ग्रंथ को व्यापक प्रचार मिला है अर्थात् वाल्मीकि रामायण और कंपरामायण के समान जनव्यवहार में यह तुलसीदास रामायण बन गई है। अलग पहचान के लिए मलयालम में भी हम केरलवर्मा रामायण, एषुत्तच्छन रामायण, कण्णश्श रामायण आदि कहते हैं न।

तुलसीदास-रामायण में भी सात कांड हैं। किंतु एक परिवर्तन दिखाई पड़ता है। युद्धकांड को लंकाकांड नाम दिया है। वास्तव में तुलसीदास ने सात सोपानों के रूप में ग्रंथ का विभाजन किया है। तब भी 'कांड' नाम प्रचलित हो गया। दूसरी रामायणों से भी यही नाम प्रचलित हुआ। इधर युद्धकांड लंकाकांड के रूप में बदल गया है। इसमें एक नवीनता है। अयोध्याकांड और लंकाकांड के समान यह नाम भी स्थल वाची बन गया है।

एक आदर्शकाव्य के लिए आवश्यक सारे गुण इस रामायण में मिल जाते हैं। 'रामचरितमानस' भाव गांभीर्य, आध्यात्मिक सौन्दर्य, दार्शनिक सिद्धान्तों के स्फुटीकरण, धार्मिक आदर्शों के प्रत्यक्षीकरण, नैतिक आदर्शों की समुत्कृष्टता, प्रतिपादन चातुर्य, भाषा सारल्य, चरित्र चित्रण शक्ति आदि की क्रीड़ावस्थली है। इसे भक्ति, ज्ञान और कर्मकाण्डों की त्रिवेणी का विशेषण दे सकते हैं। स्वर्ग और मृत्यु का यह एक अपूर्व सम्मेलन है। केरल में एषुत्तच्छन की रामायण के समान उत्तर-भारत में साक्षरता के प्रचार के लिए यह कृति बहुत अधिक सहायक बन गई है। कविता की दृष्टि से और धर्म की दृष्टि से यह काव्य उच्च स्थान पर खड़ा है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और कच्छ से लेकर मणिपुर तक इसकी ध्वनि निरंतर गूँज रही है। जो लोग रामचरित मानस नहीं पढ़ते हैं वे एक अनुपम संपदा को खो बैठते हैं।

हिन्दी के एक दूसरे प्राचीन कवि तथा भागवतकर्ता सूरदास ने एक तुलसी प्रशस्ति लिखी है। उसका एक आंश उद्धृत करना चाहूंगा-

धन्य भाग्य मम सन्तशिरोमणि
चरण कमल तकि आयउ
श्री तुलसी सुचि सन्त समागम
अद्‌भुत अमल अनूप
सूरदास जीवन फल पायो
दरसन जुगल स्वरूप।

इस गीत में सूरदास, प्रसाद सदन वदन तुलसीदास को अपने मार्ग-दर्शक के रूप में याद करते हैं। जन विश्वास के अनुसार वे दोनों समकालीन थे।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने यों लिखा है, ''रामायण की एक बड़ी विशेषता यही है कि उसमें घरेलू संबंधों को रमणीय अभिव्यक्ति मिली है। पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी आदि संबंधों के अतिरिक्त इसमें स्वामी-सेवक तथा गुरु और शिष्य के संबंधों पर भी प्रकाश डाला है। इस पहलू ने ही ग्रंथ को महत्व प्रदान किया है। इसमें भारत के बारे में एक परिचय मिलता है। भारतवर्ष के आबालवृद्ध जनों को स्त्री-पुरुष तथा उच्च-नीच भेदों से परे होकर इस कृति से शिक्षण ही नहीं आनंद भी प्राप्त होता है। यह एक धर्मशास्त्र और लक्षण युक्त महाकाव्य है।''

एक दूसरे स्थान पर ठाकुर ने पुन: लिखा है ''भारतवर्ष ने जो कुछ बनना चाहा था, तुलसीदास रामायण से वह संभव हो पाया है।''

महात्मा गांधी 'रामचरित मानस' के एक उत्तम आराधक थे। उन्होंने कई प्रसंगों में इस ग्रंथ की प्रशंसा की है।

प्रो० एम० पी० बारानिक्कोव ने रामचरितमानस का अनुवाद रूसी में किया है। उसकी भूमिका में उन्होंने 'मध्यकालीन भारत का शक्तिशाली काव्य' कहकर उसकी प्रशंसा की है। संक्षेप में यह अनश्वर काव्य, रामभक्ति का मंथन करके उससे निकाला गया अमृत है।

पहले संकेत किया है कि प्रमुख रूप से वाल्मीकि रामायण का अनुकरण करके रामचरित मानस की रचना की गई है। ग्रंथारंभ की पंक्तियां हैं-

सीतारामगुण ग्रामपुण्यारण्यबिहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥

इस प्रकार कवि ने कवीश्वर कपीश्वरों की वन्दना की है। स्पष्ट है कि यह कवीश्वर वाल्मीकि ही हैं। आदि रामायण से ही नहीं, बल्कि हनुमन्नाटक, योगवशिष्ठ, अध्यात्म रामायण, महारामायण, भुशुण्डि रामायण, याज्ञवल्क्य रामायण, भगवत्‌गीता, महाभागवत्, भरद्वाज रामायण, प्रसन्न राघव और रघुवंश जैसी कृतियों से भी कवि ने काव्य समाग्रियां जुटायी हैं। तुलसी अध्यात्मरामायण के ऋणी थे। भागवतादि कृतियों के अध्ययन ने भी भक्ति को बढ़ाया। अध्यात्मरामायण को मलयालम में प्रस्तुत करने वाले एषुत्तच्छन को भक्त शिरोमणि कहकर हम उनकी प्रशंसा करते हैं। किन्तु तुलसीदास की रामभक्ति के आधिक्य को देखकर एषुत्तच्छन की भक्ति कुछ हतप्रभ-सी हो जाती है। तुलसी बड़े रामैक्यशरण के कवि हैं। उनकी कृति भले ही प्रसिद्ध रामायण का पुनराख्यान है तथापि हम कह सकते हैं कि यह भक्ति सूत्र में शब्दों के मोतियों को पिरोकर सुन्दर ढंग से बनायी गयी एक पावन माला है। इसलिए भक्ति रस की पुष्टि के लिए तुलसी ने कई उपाख्यानों को भी अपनाया है। बालकाण्ड में दीर्घ मंगलाचरण, कथा महत्त्व वर्णन है। इसके बाद सतीचरित, कामदहन, पार्वती-मंगल, उमाशंभु संवाद, नारद मोह, मन्यु उपाख्यान,

रावणादि का जन्म आदि उपकथाएं मिलती हैं। इन सब के कारण बालकाण्ड सबसे बड़ा हो गया है। अयोध्याकांड भी छोटा नहीं है। ये दोनों काण्ड मिलकर ग्रंथ का आधा भाग बन जाऐगा। उत्तर भारत के लोग प्रमुखतया इन दोनों काण्डों क़ा पारायण करते हैं। अत्यन्त ज्ञानवर्धक कई सूक्ति रत्न इन काण्डों को प्रकाशपुंज बनाते हैं। अरण्य और किष्किंधा काण्ड अन्य रामायणों से भिन्न नहीं हैं। किन्तु पात्र के रूप में भरत को कुछ निखारा है। कदाचित् राम ने समान कवि ने भरत के साथ भी तादात्मय स्थापित किया होगा। एक विशेषता उल्लेखनीय है। महाराज़ा जनक वन जाकर रामादि पात्रों से मिलते हैं।

रामायण के सुन्दरकांड को यह नाम कैसे मिला है यह एक विवादास्पद विषय है। सुन्दर शब्द की कई व्याख्याएं प्रस्तुत करने के प्रयास हुए हैं। किन्तुं वे प्रयास सिद्धांत दशा तक नहीं पहुंचे हैं। सुन्दरकाण्ड के आरंभ की एक पंक्ति विचारणीय है। पंक्ति है 'सिंधुतीर एक भूधर सुन्दर' इस पंक्ति की व्याख्या करते हुए एक व्याख्याता ने लिखा हैं- ''समुन्द्र के किनारे पर एक पर्वत था जिसका नाम था सुन्दर''। इस पर्वत पर चढ़कर हनुमान लंका की ओर कूद पड़े थे। रामायणों के अनुसार हनुमान महेन्द्रगिरि से लंका में स्थित त्रिकूटाचल की ओर कूद पड़े थे। क्या सुन्दर को महेन्द्रगिरि की ऊंची चोटी मान सकते हैं ?

अगर वह सच है तो हनुमान के द्वारा समुन्द्र लंघन शुरू होने के कारण इस कांड को सुन्दरकाण्ड नाम मिला है। ऐसा मान भी सकते हैं किन्तु उपर्युक्त पंक्ति में प्रयुक्त 'सुन्दर' शब्द मधुर का विशेषण भी हो सकता है। जो भी हो, आशा है कि सहृदय पाठक इसके बारे में सोचेंगे।

युद्धकांड 'रामचरित मानस' में लंकाकांड बन गया है। उसे हम कवि का मनोधर्म मान सकते हैं। इस काण्ड का अंगद-रावण संवाद एक महत्त्वपूर्ण अंश है। दवा लेकर आने वाले हनुमान की मुलाकात भरत से होती है। यह वर्णन भी बहुत रोचक है।

उत्तरकांड एकदम बदल गया है। सीता परित्याग का वर्णन अन्य रामायणों में मार्मिक ढंग से हुआ है। किन्तु ''रामचरितमानस'' में वह प्रसंग नहीं है। इसके बदले श्रीराम का राज्याभिषेक, राम का शासन, कुछ तत्वोपदेश, गरुड़-काकभुशुण्डि संवाद आदि का प्रतिपादन उत्तरकांड में हुआ है। इसका कारण क्या है ? मेरा दृढ़ विश्वास है कि कवि की भक्ति के कारण ही ऐसा हुआ है। अपने इष्टदेव रामभद्र से सतीरत्न सीता का तिरस्कार करवाने में तुलसीदास को प्राणपीड़ा महसूस हुई होगी। भक्ति की पराकाष्ठा में पहुंचा हृदय वह पीड़ा बर्दाश्त नहीं कर सका। इसलिए उस भाग पर आदर अन्य रामायणों की ओर कवि आंख मूंद लेते हैं। इसलिए उन्होंने उत्तरकाण्ड को ज्ञानकाण्ड बनाने का प्रयास किया था। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने पहले ही उल्लेख किया था कि अयोध्या में रहते समय ही सीता को दो पुत्र (कुश और लव) पैदा हुए थे। कवि ने जानबूझकर ऐसा वर्णन किया है। कवि ने कथा की शोकपूर्ण समाप्ति की भी बात सोची होगी। इस बात पर हम आश्वस्त हो सकते हैं कि तुलसीदास ने सीता परित्याग को छोड़ दिया है। किन्तु अगर वे उस प्रसंग का वर्णन करते भी तो कितना बेहतर होता! आखिर एक कृतहस्त कवि की अभिव्यक्ति के लिए एक मार्मिक प्रसंग है न ?

तुलसीदास का काव्य मनोभिराम और मधुर है। उसमें शुरू से अन्त तक भावानुरूप भाषा का प्रवाह है। उसकी ग्रामीणता (सरलता), प्रसादात्मकता और कान्ति हर किसी को आकृष्ट करने वाले तत्व हैं। अगर कोई रम्य शब्दों का एक सरोवर देखना चाहता है तो उन्हें रामचरितमानस देखना पर्याप्त होगा। रामचरितमानस की भाषा ब्रज मिश्रित अवधी है। ब्रज मिश्रित अवधी कहते समय अवधी को ही प्रमुखता मिलती है। यह तांबे से मिश्रित सोना कहने के बराबर है। दूसरी कुछ भाषाओं के शब्द भी उसमें हैं। एक पण्डित काव्यास्वादक ने उसकी प्रशंसा यों की है "एक अपूर्व सुन्दरी नायिका के समान सहज रूप माधुर्य से तुलसी-सरस्वती जनमानसों को आकृष्ट करती है।" कवि ने समान पटुता से शब्दार्थों का भी प्रयोग किया है। कविता की गेयता विस्मयजनक है। उससे भक्ति की अनस्यूत धारा भी मिल गयी है। तब रामचरितमानस ने जनमानस को वशीभूत किया। एक बात उल्लेखनीय है कि उन्होंने जो लिखा है वह सब अपनी हृदयानुभूति के बल पर लिखा है। गोस्वामी का परम लक्ष्य आत्म संस्करण है। इसके लिए आवश्यक पूरी सामग्रियां उन्होंने अपनी कविता में एकत्रित की हैं। तुलसी वाल्मीकि और व्यास की सांस्कृतिक परंपरा में आने वाले आदमी हैं। ऋषि ही कवि है। तुलसी ने इस उक्ति को चरितार्थ बनाया है। रमणीय भावनाएं और भाव व्यंजक अलंकारों ने काव्य को आपादचूड़ आशीर्वाद दिया है। बालकांड का सीता-स्वयंवर कवि की सृजन प्रतिभा का उत्तम उदाहरण है। वह भाग और किसी रामायण में इतने सुन्दर ढंग से प्रतिपादित नहीं हुआ है। पाठकों के मानस में वे जनक की राजधानी का एक स्पष्ट चित्र खींच सके हैं। पात्र सृष्टि में कवि की निपुणता अत्यंत आकर्षक है। यह दृष्य हम लक्ष्मण के चरित्र-चित्रण में देख सकते हैं। परशुराम-लक्ष्मण समागम के प्रसंग में लक्ष्मण 'रामचरितमानस' का परम तेजस्वी वीर राजकुमार है। सहृदय पाठक इस बात को मान लेंगे कि इस निर्भय साहस को कवि सर्वजनप्रिय बना सके हैं। रसाभिव्यक्ति में भी 'मानस' एक अनुपम स्थान का अधिकारी है। प्रकृति निरीक्षण में कवि की दक्षता असामान्य है। आध्यात्मिक सौन्दर्य इस काव्य के अन्तःसार के रूप में विराजमान है। कविता मनुष्यात्मा की कलात्मक अभियंजना है। मनोवृत्ति की यह सृष्टि पूरे मानव जीवन में व्याप्त है। मनोवृत्ति दो ढंग से अभिव्यक्त हो सकती है। एक पद्यरूप है और दूसरे गद्यरूप में। इनमें पद्यरूप (कविता) अधिक प्रभावोत्पादक दिखाई पड़ता है। इसका कारण क्या है? बात यही है कि कविता लय-संयुक्त मात्राओं के नियमों से आबद्ध है। उनसे एक प्रकार के संगीत का उद्भव होता है। Poetry is Music in words (शब्दों का संगीत कविता है) यह एक प्रचलित उक्ति है। इस शाब्दिक संगीत को ही छन्द मानते आये हैं। छंदविधान के जरिए कविता और संगीत का मिलन होता है। चूँकि वह अधिक सुखदायक है इसलिए वह हृदय में हठात प्रवेश करके आनन्द की तरंगों को हिलाती है। कुछ लोगों को विश्व के आरंभ से कायम रहने वाली तथा इस अन्तहीन आवेग संक्रमण प्रक्रिया की सूक्ष्म जानकारी नहीं है। ऐसे लोग छंदोबद्ध साहित्य रूप के अस्तित्व पर संदेह प्रकट करते हैं। भाव-विकार से बिल्कुल अछूता रहने वाले विज्ञान को ऊपर उठाकर वे काव्य कला को चुनौती दे रहे हैं। अगर विज्ञान की प्रगति इसी ढंग से होती है तो हमें एक विनाशोन्मुख, विकारहीन और जटिल संसार में रहना पड़ेगा। खैर, उस बात को रहने दो।

छंद दो प्रकार के होते हैं--मात्रिक और वार्णिक। अगर चारों चरणों की मात्राएं समान हैं तो वह मात्रिक छंद है। अगर चारों चरणों में वर्णों का क्रम समान है तो वह वर्णिक छंद है। रामचरितमानस में मुख्यत: दोहा, चौपाई जैसे मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है। ये दोनों हिन्दी के छंद हैं। इनके अतिरिक्त सोरठा, तोमर, हरिगीतिका जैसे हिन्दी छंद भी प्रयुक्त हए हैं। अनुष्टुप, इन्द्रवज्र, त्रोटक, भुजंगप्रयात, बसंततिलका, शार्दूलविक्रीड़ित जैसे संस्कृत छंदों का प्रयोग काण्डारंभ में हुआ है। कवि दोनों प्रकार के छंदों के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। तुलसी के दोहे, चौपाई जैसे छंद अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर सके हैं।

क्या कविता में अलंकार की आवश्यकता है ? रूपसौन्दर्य और भावगांभीर्य पर्याप्त है न? -इस प्रकार के प्रश्न पेश करने वाले कुछ लोग हैं। उनको मेरा उत्तर है कि यह पर्याप्त नहीं है। कविता की आत्मा रस को अभिव्यंजित करने के लिए अलंकार अनिवार्य हैं। अग्निपुराण के अनुसार आशयों के स्फुटीकरण के लिए वे अत्यंत सहायक हैं। इसमें संदेह नहीं है कि अर्थालंकार अर्थ को दीप्त बनायेंगे। अगर वह नहीं है तो शब्द-सौन्दर्य भी मनोरंजक नहीं होगा। एक आलोचक की राय है कि अर्थालंकार रहित सरस्वती विधवा के समान श्रीविहीन हो जायेगी। कुछ आलोचकों का तर्क है कि अलंकार शब्दार्थों के अस्थिर धर्म हैं। उनकी राय है कि गहने न पहनने पर भी ‹.रीर की निसर्ग-शोभा प्रकट होगी। इसी प्रकार शब्दार्थों का सहज सौन्दर्य भी दर्शनीय होगा। एक अलग दल के आलोचक बताते हैं कि काव्यसाम्राज्य के अधिकारी भाव, विचार और भावना हैं। वे भी अलंकार को परिपार्श्व का स्थान देते हैं। कुछ औरों की राय है कि कविता में अलंकार का विशिष्ट स्थान है। अलंकार सिर्फ काव्य की शोभादायक सामग्री नहीं है, वह भावोन्मीलन को सहायता देने वाला हेतु भी हैं। इन तर्कों की स्थिति जो भी हो, एक बात निर्विवाद रह जाती है कि अलंकार के प्रति लगाव एक विश्वसहज गुण है। वह सिर्फ काव्य के लिए नहीं, जीवन के लिए भी लागू होने वाला गुण है।

तुलसीदास अलंकार प्रिय कवि हैं। उन्होंने 'रामचरितमानस' में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का भरपूर प्रयोग किया है। कवि के मुख्य अलंकार भी यही हैं। रूपक, खासकर परंपरित रूपक के प्रयोग में तुलसीदास अत्यंत चतुर थे। मुझे लगता है कि उनका सर्वप्रिय अलंकार रूपक है। सरोवर-सरित रूपक आदि इसके उदाहरण हैं। अन्य कई सुन्दर अलंकार भी मानस में देख सकते हैं। सीता के सौन्दर्य के वर्णन के प्रसंग में संभावना अलंकार देख सकते हैं। शब्दालंकारों के प्रयोग में भी तुलसी ने बड़ा ध्यान रखा है। हिन्दी कविता में आमतौर पर दिखाई पड़ने वाले अंत्यानुप्रास का प्रयोग रामायण में प्रचुर मात्रा में देख सकते हैं।

आमतौर पर तुलसी के बारे में एक विश्वास प्रचलित हो गया है कि वे नारीनिन्दक थे। यहां तक जवाहरलाल नेहरू ने भी अपनी प्रसिद्ध कृति 'हिन्दुस्तान की कहानी' में ऐसी शिकायत की है। अयोध्याकाण्ड की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करते हुए तुलसी की नारी निन्दा के उदाहरण पेश किए जाते हैं। किंतु यह आरोप बेबुनियाद है। इस बात पर भी सोचना आवश्यक है कि किस प्रसंग विशेष में वे विचार प्रकट किए गए हैं। वह मुख्य बात है। कैकेयी के कारण श्रीराम के जीवन में

संकट आया था। तब भरत उसकी भर्त्सना करता है। फिर राम, नारद को मोह छोड़ने का उपदेश देते हैं। वे विशेष प्रसंग हैं, सामान्य नहीं। एक विरक्त के लिए विषय निंदा अपरित्याज्य है। वैराग्य की पुष्टि के लिए वह अनिवार्य भी है। अन्य कवियों ने भी ऐसे प्रसंगों का वर्णन किया है। किसी भी साहित्य को देख लेने पर उदाहरणों की कमी नहीं होगी। 'वैराग्यशतक' में भर्तृहरि ने स्त्रियों की निंदा की है। किन्तु 'शृंगारशतक' में उन्होंने स्त्री की प्रशंसा की है। ऐसी बातें प्रसंगानुसार लिखी जाती हैं। साध्वीरत्न सीता देवी के प्रति कितना आदर भाव प्रकट किया है। चरित्रहीन स्त्रियों की कुटिलता को देखते समय हर जगह के कवि रोष प्रकट करते हैं। तब क्यों केवल तुलसीदास को दोषी ठहराते हैं ? कौशल्या, सुमित्रा, अंरुधती शबरी, मंदोदरी आदि को तुलसी ने पूज्यनीय स्त्रियां माना है।

बयालीसवें वर्ष की आयु में तुलसी ने रामायण की रचना शुरू की थी। ऐसा मानने के लिए ठोस कारण हैं। तब तक उनमें वैचारिक पक्वता आ गई थी। हृदय में विद्यमान विरक्ति-भावना, तीर्थ यात्रा, सत्संग, विपुल ग्रंथ परिचय आदि बातों ने आध्यात्मिकता को प्रमुखता देने के लिए तुलसी को प्रेरित किया था। 'रामचरितमानस' के उत्तर काण्ड में उनके दार्शनिक विचार अधिक वर्णित हुए हैं। इस दृश्य जगत का आधार परमात्मा है। जीवात्मा और परमात्मा के बीच अटूट संबंध है। इसलिए कोई भी जीवन अलग नहीं खड़ा रह सकता है। जीव ईश्वरांश है। वह त्रिगुणमयी माया में स्थित है। ईश्वर के समान जीव भी चेतन रूप और आनंद रूप है। जीव माया के नियंत्रण में पड़कर पंजरबद्ध शुक के समान अस्वतंत्र बन जाता है।

तुलसीदास के दार्शनिक विचार इस ढंग से आगे बढ़ते हैं। वे ब्रह्म को रामरूप में देखते हैं। भले ही शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत को वे मानते हैं तथापि सगुणोपासना के प्रति उन्हें अधिक लगाव है। तुलसीदास भक्ति-मार्ग के एक अतिविश्वस्त अनुयायी हैं। उसके साथ-साथ वे धर्म के एक परमधीर योद्धा भी हैं।

सत्संग का सौभाग्य प्रदान करना, सदाचार में डूबकर जीवन बिताना और पूरे संसार को राममय होकर देखने लगता है कि इन तीन लघु वाक्यों में तुलसी के संदेश को समेट सकते हैं।

भारत को आजादी मिलने के पहले महात्मा गांधी ने ''यंग इंडिया'' में तुलसीदास रामायण के बारे में एक लेख लिखा था। उस लेख ने मुझे बहुत अधिक आकृष्ट किया। आज की स्थिति अलग है। किन्तु उस युग में उनके वाक्य को वेदवाक्य के समान आदर मिलता था। उन दिनों मैं हिन्दी सीख रहा था। उस समय 'मलयाल मनोरमा' के महान संपादक मामन माप्पिला ने उस लेख की ओर मेरे ध्यान को आकृष्ट किया था। उनके प्रोत्साहन के कारण उस विशिष्ट ग्रंथ पर मेरी दृष्टि पड़ी। वह केरल में हिन्दी प्रचार का आरंभिक काल था। इसलिए इस रामायण के बारे में अधिक लोगों को जानकारी नहीं थी। एक बार ग्रंथ का अध्ययन किया तो अपनी शक्ति के बाहर की एक कामना मेरे मन में उत्पन्न हो गई। काव्य रूप में उसका अनुवाद पेश करना है। यही मेरी चाह थी। युवकोचित साहस के साथ मैं उसमें निरत हो गया। पूरे बालकाण्ड को (उपाख्यानों को छोड़कर) अनुवाद करके प्रकाशित भी किया था। मलयालम के सहृदय पाठकों ने उसका सहर्ष स्वागत

किया। किन्तु दैवदुर्विपाक से अनुवाद काम बन्द हो गया। फिर बहुत समय तक उस पर ध्यान न दे सका। शुरू किये काम को पूरा न करने पर मन असंतुष्ट रहा। नौकरी से जुड़ी जिम्मेदारियां, मौलिक काव्य रचना और अन्य झंझटें भी थीं। तब मन में एक शंका उत्पन्न हो गई। क्या गरीब की मनोकामना के समान यह अभिलाषा आत्मा में ही विलुप्त हो जाएगी? सेवानिवृत्त होने पर समय मेरी ओर देखकर मुस्कुराने लगा। निस्संदेह यह उत्साहजनक प्रेरणा थी। मैंने नवोन्मेष और दृढ़प्रतिज्ञा के साथ उस पुराने ग्रंथ को हाथ में लिया। यों मैं पुन: इस कल्लोलाकुल भीषण सागर में कूद पड़ा।

जिस प्रकार भक्त इष्टदेव की मूर्ति की उपासना करता है उसी प्रकार तीन सालों तक मैंने भी निरंतर 'रामचरितमानस' की उपासना की। एक धर्मसुभग पौराणिक ग्रंथ का स्पर्श कर रहा हूं इसी बोध से मैंने अनुवाद शुरू किया था। शुरू से अंत तक वह विचार बना रहा। काव्य के चैतन्य को अनुवाद में प्रतिफलित नहीं करने पर वह अपराध बन जायेगा। कवि हृदय को जानकर आशयों को अभिव्यक्त करना है। कविता की आनन्द-वीथी गेयता में कमी न आवे इस प्रकार के विचारों से हृदय दोलायमान था। प्राचीन हिन्दी में प्रणीत काव्य होने के कारण अर्थ ग्रहण के लिए कई व्याख्याओं पर निर्भर रहना पड़ा। व्याख्या-भेद दिखायी पड़े तो अधिक युक्ति संगत व्याख्यानओं को अपनाया है। भक्ति-भावना में यह कृति अध्यात्म रामायण से समानता रखती है। इसलिए द्रविड़ छंदों में इसका अनुवाद करने का विचार हुआ। छंद की आवृत्ति को हटाने के लिए सात काण्डों का अनुवाद सात छंदों में किया है।

अनुवादक को असमंजस में डालने तथा अधीर बनाने वाले कई प्रसंग तुलसीदास रामायण में हैं। यह महाग्रंथ संवादों का समूह है। शुरू से अंत तक उमामहेश्वर संवाद है। फिर भारद्वाज-याज्ञवल्क्य संवाद, राम-भरत-संवाद, गरुड़-काकभुशुण्डि संवाद आदि भी हैं। वे सब भक्ति धर्म ज्ञान कांडों के लघु भाष्य हैं। उन सबमें गहन तत्व भरे पड़े हैं। कुछ भागों में वे परंपरित रूपक के माध्यम से प्रकट हुए हैं। इसलिए उन अंशों को स्पष्ट करना अनुवादक के लिए बहुत कठिन लगा है।

एक और कठिनाई तुलसीदास की रामभक्ति का असाधारण प्रवाह है। राम के गुणों का वर्णन कितना भी क्यों न करें कवि ऊबेंगे नहीं। किन्तु अनुवादक को यह डर होगा कि ऐसे गुणगानों की आवृत्ति क्या साधारण पाठकों को रोचक लगेगी। ऐसे प्रसंगों में उक्ति वैचित्र्य से ऊब को कम करने के लिए भरसक कोशिश की है। रावण-वध के बाद एक स्तोत्रमंजरी से राम की आराधना करवा दी है। उन भागों में ऐसे स्तोत्रों को बार-बार गाने के सिवा अनुवादक के सामने और कोई चारा नहीं है। सारे स्तोत्र लगभग एक ही प्रकार के हैं।

मूलग्रंथ के हर गान में आमतौर पर अंत्यानुप्रास का पालन हुआ है। इस रीति को अपनाकर अनुवाद करना संभव नहीं है। श्रवणसुख के लिए वह ठीक लगेगा। किन्तु इस प्रासमोह के कारण अर्थ पुष्टि से दूर रहने वाले शब्द भी घुस आते हैं। किन्तु इस स्थिति में भी हिन्दी कविता ने इस तरीके को नहीं छोड़ा है। गेयता तथा भाषा की प्रकृति के अनुसार द्वितीयाक्षरप्रास तथा अनुप्रास का

प्रयोग करके उपर्युक्त दोषों को दूर करने की मैंने कोशिश की है। विशेष चमत्कार न रखने वाले भागों को छोड़ना पड़ा है। उत्तराकाण्ड में पिष्टपेषण शैली में किये कुंछ वर्णनों और विवरणों को छोड़ना पड़ा है। इसके कारण ग्रंथ शरीर को कुछ भी दोष नहीं आया। एक सुन्दर मोर के दो तीन पंखों के झड़ने के समान इसे मानना काफी होगा। अंग्रेजी अनुवादक ने भी ऐसा किया है। 'मानस' के हिन्दी संस्करणों में भी पांडित्य और औचित्य के पारखी प्रकाशकों ने ऐसा तरीका अपनाया है। मेरे परीक्षण से पता चला कि सारे पाठ एक बराबर नहीं हैं।

मैंने मनोयोग के साथ रसाभिव्यक्ति की दिशा में भी काम किया है। बालकाण्ड में वात्सल्य, जनकोद्यान के राम-सीता दर्शन में श्रृंगार, विच्छिन्नाभिषेक में करुण, सीता हरण में करुण विप्रलंभ, लंका दहन में अद्‌भुत-भयानक-वीभत्स, राम रावण युद्ध में वीर-रौद्र, नारद मोह में हास्य आदि रसों का प्रतिपादन हुआ है। इन रसों और संवादों में, खासकर उत्तरकाण्ड में, प्रकट हुए शांत रस की कमी नहीं आने दी है। अहंकार लेश के बिना मैं कहना चाहता हूं कि काव्य के रसों को भावुक हृदय की ओर संक्रमित करने के लिए मैंने जागरूकता से काम किया है।

ग्रंथ की श्रेष्ठता को ध्यान में रखकर और भरसक मनोयोग के साथ मैंने यह अनुवाद कार्य पूरा कर लिया है। तब भी मेरी कमजोरी या अपटुता के कारण कुछ गलतियां आयी होंगी। आशा है कि ऐसी गलतियों को भाषाभिमान के नाम पर सज्जन क्षमा करेंगे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि सहृदय संसार ने अनुवादक को जो अजादी दी है उससे परे होकर मैंने कुछ भी आजादी नहीं ली है।

महाभारत का अनुवाद मलयालम में कुञ्ञिकुट्टन तंपुरान ने किया था। काम पूरा होने पर उनको प्राप्त आनंद और संतोष का अनुपात कितना बड़ा रहा होगा, मुझे आज उसका पता चल रहा है। उससे तुलना करते समय यह काम निस्सार होगा। तब भी एक बात अवश्य रह जाती है।

मेरे जीवन की एक बड़ी कामना इस ढंग से साकार हो रही है। इसी प्रसन्नता के साथ मैं यह भूमिका लिख रहा हूं। अन्य सारी परिष्कृत भाषाओं में पहले ही अनूदति सर्वाराध्य तुलसी रामायण का एक समग्र अनुवाद मलयालम भाषा प्रेमियों के सामने मैं समर्पित कर सका। मैं साभिमान कहूंगा कि ईश्वर नुग्रह के कारण ही यह संभव हुआ है।

सम्पर्क : *हिन्दी विभाग, कालिकट विश्वविद्यालय, केरल- 673635*

इतिहासकार जोनराज

□ *अर्जुन देव मजबूर*

कश्मीर को यह गर्व प्राप्त है कि इतिहास के क्षेत्र में इसने अद्वितीय कीर्तिमान स्थापित किए। कल्हण ने क़रीब पांज हज़ार वर्ष का इतिहास आज से कोई साढ़े नौ सौ वर्ष पूर्व रचा और वह भी काव्यबद्ध। यद्यपि इस प्रकार के इतिहास को तज़किरों की श्रेणी में गिना जाता है फिर भी फारसी, उर्दू और अंग्रेज़ी में कश्मीर का इतिहास लिखने वालों ने राज तरंगिनी से काफी लाभ उठाया। इस तरह राजतरंगिनी कश्मीर के एक लम्बे युग के इतिहास के क्षेत्र में विश्वस्नीय आधारशिला का रूप धारण कर गई।

राजतरंगिनी को विभिन्न युगों में पांच विद्वान इतिहासकारों ने पूर्ण किया। इन का क्रम इस प्रकार है :-

कल्हण, जोनराज, श्रीवर, शुक तथा पच्चभट्ट। जोनराज की मृत्यु 1459 ई० में हुई। वे सत्तर वर्ष जीवित रहे और इस प्रकार अनुमान यह है कि उनका जन्म 1389 ई० में हुआ। इन की जन्मतिथि के सन्बन्ध में निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं। इस विद्वान इतिहासकार के जीवनवृत के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से जानकारी नहीं मिलती हां उनकी राजतरंगिनी में हमें इस सम्दर्भ में कुछ संकेत मिलते हैं। उनके शिष्य श्रीवर ने भी, जिन्होंने तीसरी राजतरंगिनी लिख कर इस इतिहास-माला को आगे बढ़ाया, अपने शिक्षक जोनराज के सम्बन्ध में कुछ तथ्यों का उद्घाटन किया है। श्रीवर कहते हैं :-

''इस पृथ्वी पर मेरे गुरु का जन्म हुआ। वे ज्योत्स्नाकर नाम रखते थे। वे सदा के लिए बोलने में एक अमृत की खान के समान थे। वे शिव-भक्त थे और सम्पन्न व्यक्ति थे। वे काफी प्रसिद्ध थे। वचन के पक्के थे और उन्होंने क्रोध का पूर्ण रुपेण त्याग किया था। वे कई पंडितों के नेता थे। राजा सर्वदा उनका आदर करता था। जोनराज विशुद्ध हृदय, अनेक गुणों से सम्पन्न। वेदों के ज्ञाता थे और सदा कार्य में व्यस्त रहते थे। शिष्यों की एक खासी संख्या उन से सम्बद्ध थी और वे राजा (ज़ैनुलआबिदीन) के दरबार में अन्य अनुयायियों के बीच बृहस्पति के समान दिखाई पड़ते थे।''

जोनराज एक शैव-भक्त थे और इसी लिए उन्होंने अपनी राजतरंगिनी को अर्धनारीश्वर शिव की आराधना से आरम्भ किया। इन्हें समकालीन विद्वानों में एक विशेष स्थान की मान्यता प्राप्त थी। यही कारण था कि वे जैनुल आबिदीन के दरबार में प्रविष्टि प्राप्त कर सके और उन्हें

राज़ा ने एक सरकारी आज्ञा के तहत कश्मीर का इतिहास लिखने का कार्य सौंपा। सरकार की ओर से उन्हें ''राज़ानक'' की उपाधि प्रदान की गई। यह उपाधि बाद में चलकर ''राज़दान'' में परिवर्तित हुई और इसी को संक्षिप्त रूप में ''रैना'' नाम मिला। आज भी कई कश्मीरी पंड़ितों के नाम के साथ अन्त में ''राज़दान'' अथवा ''रैना'' जुड़ा रहता है।

जोनराज ने राजतरंगिनी के अतिरिक्त कई पुस्तकों की रचना की। इनमें मंख के श्रीकंठ चरित पर टिप्पणी 'भारवी' के 'किरातार्जुनीय' पर टीका तथा राजानक जयानक द्वारा रची ऐतिहासिक कविता - पृथ्वीराज विजय नामक ग्रन्थ की टीका सम्मिलित है।

इनकी इतिहास लिखने की शैली काफी गूढ़ है और संक्षिप्तता, घनत्व और पहेलियों में बात कहने से कहीं-कहीं पर ऐतिहासिक तथ्यों को छिपाये हुए है। यह कहीं पर सांकेतिक भाषा का प्रयोग करते हैं।

जोनराज की राजतरंगिनी Chronicles अर्थात् तज़किरों की श्रेणी में ही आती है। यहां यह कहना आवश्यक है कि शैव होने के कारण उन्होंने बौद्धों के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्रस्तुत नहीं की है। ब्राह्मणों के इतर अन्य हिन्दुओं के सामाजिक वर्गीकरण पर भी वे चुप दिखाई देते हैं। जोनराज ज़ैनुल आबिदीन के युग में रहने के कारण इस ज़माने के विशेष हालात को विस्तार से कहने में समर्थ हुए हैं। इस क्रानिकल में चौदह हिन्दू राजाओं और नौ मुसलिम शासकों का वर्णन किया गया है। तज़किरे का महत्व कश्मीर में हिन्दू शासन के पतन और मुसलिम शासन के प्रादुर्भाव में निहित है। जिन राजाओं के युग का इस तज़करे में वर्णन आया हैं वे हैं :-

जय सिंहा, परमानुका, वन्ति देव, वुप्प देव, जासक, जगदेव, राजदेव, संग्रामदेव, रामदेव, लक्ष्मणदेव, सिंह देव, (सुह देव), रिंचन, उदयन देव, क़ोटा देवी, शमसुद्दीन (शाहमीर), जमशैर, अलाउद्दीन, शहाबुद्दीन, क़ुतुबुद्दीन, सिकन्दर, अली शाह, ज़ैनुल आबिदीन।

ज़ैनुल आबिदीन

जोनराज ने इस बादशाह के सम्बन्ध में चित्र का प्रकाशमान भाग ही प्रस्तुत किया है। जिन मुख्य बातों का ज़िक्र इतिहासकार ने किया है वह इस प्रकार हैं :-

इस बादशाह ने धार्मिक सहिष्णुता का सूत्रपात करके एक नये युग को आरम्भ किया। राजा ने अपनी जनता को अपनी इच्छा का धर्म पालने की खुली छूट दे दी थी। इस से पूर्व जो कश्मीरी हिन्दू दबाव और सख्ती के कारण कश्मीर छोड़ कर चले गए थे उन्हें ज़ैनुल आबिदीन ने वापस बुला कर हर प्रकार की सुरक्षा प्रदान की। सुलतान सिकन्दर के युग में जिन मन्दिरों को तोड़ा गया था। उन में से कुछ का नव निर्मान बादशाह ज़ैनुल आबिदीन ने कराया। इस बादशाह का नाम आगे चल कर कश्मीरी में बड-शाह अर्थात बड़ा विशालहृदय राजा पड़ा और आज तक ज़ैनुल आबिदीन इसी नाम से विख्यात है।

बादशाह ने लद्दाख में यवनों के हाथों एक बुद्ध मूर्ति को खण्डित होने से बचाया। यह सुन्दर मूर्ति सोने की बनी हुई थी। साथ ही बादशाह ने तिलकाचार्य को जो एक बौध थे महात्मा की पदवी पर नियुक्त किया। राजमार्गों पर डकैतियों को रोकने के लिए उन ग्राम निवासियों को दण्डित किया गया जो डाकुओं को शरण देते थे। चोरी के लिए मौत की सज़ा खत्म कर दी गई। ऐसे कई कदम उठाए गए जिन से अदालतों से रिश्वत को समाप्त किया गया और इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी इस बुराई को सख्ती से दबाया गया। बादशाह ने इस्लाम धर्म में आने के लिए दबाव और सख्ती के बदले ऐसे व्यक्तियों का सामाजिक तथा आर्थिक दर्जा बढ़ाने पर बल दिया।

यहां यह कहना उचित रहेगा कि ज़ैनुल आबिदीन के पास एक शक्तिशाली सेना थी और उसके शासन का प्रभाव गांधार, सिन्धु, मद्र देश, राजापुरी और उद्भाण्डपुर तक था।

निर्माण कार्य

बडशाह के निर्माण कार्यों और आर्थिक सुधारों के सम्बन्ध में भी जोनराज ने सविस्तार जानकारी प्रस्तुत की है। इन में निम्नलिखित कार्य उल्लेखनीय हैं :-

पैदावार की बढ़ौतरी के लिए बडशाह ने सिंचाई के कई मन्सूबे हाथ में लेकर पूर्ण करवाए। इन में उत्पलपुर, नन्दशैल, कराल, अवन्तिपुर आदि स्थानों की सिंचाई स्कीमें प्रमुख हैं। मार्तण्ड नहर को आज तक बाडशाह से सम्बन्ध होने के कारण ''शाह कल'' अर्थात् शाही नदी के नाम से सम्बोधित किया जा रहा है। यह नहर पहलगाम क्षेत्र में बहने वाली लिदर नदी से निकाली गई है और मार्तण्ड क्षेत्र को सींचने का कार्य करती है। विश्व प्रसिद्ध मार्तण्ड मन्दिर इसी नहर के किनारे पर निर्मित हुआ था। इस मन्दिर को सुलतान सिकन्दर के युग में खण्डित किया गया किन्तु इसकी दीवारें और गर्भ गृह आदि आज तक उसी हालत में हैं। जोनराज यहां पर एक विशेष जानकारी प्रदान करते हैं और वह है मार्तण्ड क्षेत्र में राजा द्वारा गन्ने की खेती का परीक्षण। इतिहासकार कहता है कि मार्तण्ड में गन्ना उगा। वे इस के मीठे रस की भी प्रशंसा करते हैं। सम्भवत: गन्ने की खेती कश्मीर में बर्फ गिरने के कारण पनप न सकी।

'कराल' क्षेत्र में ''आडविन'' स्थल का ज़िक्र है। मेरे विचार में यही नाम आज के ''आरवनी'' (मिनी कस्बा) में परिवर्तित हुआ है। यह कस्बा 'बिशौ' नदी के किनारे पर बसा हुआ है। यहां से, आज से कुछ वर्ष पूर्व धान आदि किश्तियों में श्रीनगर पंहुचाया जाता था। इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं एक डूंगे (बड़ी नौका) में वितस्ता नदी से सुप्रसिद्ध स्थान 'शादीपुर' तक की यात्रा की है। शादीपुर में सिन्धु और वितस्ता नदी का संघम है और यहीं पर प्रत्येक दस वर्ष के पश्चात ''दशहार'' महोत्सव का आयोजन किया जाता था। इस महोत्सव में हज़ारों यात्री भाग लेते थे। हिन्दुओं की दृष्टि से इस स्थल को काफी पवित्र माना जाता है। मैं स्वयं ऐसे एक महोत्सव में आज से कोई पचास वर्ष पूर्व सम्मिलित हुआ था। ''कराल'' क्षेत्र में ही ज़ैनुल आबिदीन ने जैनपुरी नाम की छोटी नगरी बसाई। इसी का नाम आज ज़ैनापुर है। मैं स्वयं इसी स्थान पर जन्मा हूं। यहां यह कहना उचित रहेगा कि फारसी तारीख ख्वाजा मुहम्मद आज़म द्यदमरी कृत ''वाक़ाते कश्मीर''

में इस बात का वर्णन है कि बडशाह, ज़ैनापुर में रहने वाले सन्त (फ़क़ीर) शमसुद्दीन बग़दादी के पास दर्शनों के लिए आया करते थे और इसी कारण उन्होंने ज़ैनापुर स्थान में एक बड़े करेवे पर कुछ शाही महल्लात बनवाए। इन शाही महलों का आज कोई नामोनिशान मौजूद नहीं। हां करेवे को अब पैरिश्रम-फ़ार्म में बदल दिया गया है। यहां समीप ही एक बहुत गहरा चश्मा है जिसे नील नाग कहते हैं। ज़ैनापुर को जोनराज ने नगरी बताया है गांव नहीं। उसके अनुसार उस ज़माने में यहां हार पहने सुन्दर योषिताएँ और ब्राह्मण रहा करते थे।

कुछ भी हो बडशाह ने ज़ैनापुर में एक छोटी नगरी बसाई थी इस में कोई संदेह नहीं। इसी प्रकार बडशाह ने सोपुर नगर के पास ज़ैनगीर नाम का गांव बसाया और डल झील के किनारे सिद्धपुरी स्थल का निर्माण किया। बडशाह के अन्य स्मरणीय निर्माण कार्यों में वुलर में एक द्वीप का निर्माण और उस पर एक अट्टालिका बनवाने से सम्बद्ध है। इसका वर्णन जोनराज इस प्रकार करते हैं :-

बडे राजा ने महा पद्मसर अर्थात वुलर झील में एक द्वीप ''ज़ैनालंक'' नाम से बनवाया। इसके लिए उसने पत्थरों से भरी बड़ी-बड़ी किश्तियों को इस झील के एक स्थान पर डुबवा कर एक द्वीप बनवाया। इसी छोटे से द्वीप पर राजा ने 'ज़ैना-उब' नाम का एक वृहद महल बनवाया। इस महल के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह इमारत कई मंज़िल ऊंची थी और इस में कई विशाल हाल बने हुए थे। इसकी कलात्मकता भी काफी चर्चित रही है।

बडशाह ने श्रीनगर में एक बड़ी मस्जिद भी बनवाई जिसे जामा मस्जिद का नाम दिया गया।

नदियों से सोने का गर्दा एकत्र करने का कार्य भी बडशाह के शासनकाल में हुआ। सिन्धु तथा अन्य पहाड़ी नदियों में रेत के साथ यह सोना जाने कहां से आता था इस का वर्णन ग्रन्थकार ने नहीं किया है। इसी प्रकार कामराज्य (कमराज़) आधुनिक उत्तरी कश्मीर में उसने एक तांबे की खान का पता लगवा कर तांबा निकालने का उद्यम किया। यह तांबे की खान वुलर झील के किनारे स्थित एक पहाड़ी में थी।

संस्कृत साहित्य

जोनराज का कथन है कि बडशाह ने संस्कृत साहित्य की प्रगति के लिए कार्य किया उसने साहित्यकारों का हौसला बढ़ाया। इस कार्य से संस्कृत लेखकों और विद्वानों ने बादशाह को देवता का दर्जा प्रदान किया।

यहां कहना उचित रहेगा कि बडशाह स्वयं फारसी का विद्वान था और वह फारसी में कविता भी करता था। उसके शासन काल में फारसी भाषा में उपनिषदों आदि का अनुवाद हुआ। बडशाह के दरबार में मुल्ला अहमद जैसे सुप्रसिद्ध फारसी विद्वान मौजूद थे। इस बात के भी प्रमाण मिल चुके हैं कि इस युग में कश्मीरी भाषा ने भी ख़ासी प्रगति की किन्तु लिखित रूप में इस काल की कश्मीरी कविता उपलब्ध न होने के कारण इस बारे में उदाहरण नहीं दिए जा सकते।

ज़ैनुल आबिदीन के सम्बन्ध में जोनराज कहता है कि 1413 और 1419 ई० के बीच उसे राजा अली शाह ने ठक्करों समेत भगाने पर विवश किया था। श्रीवर के अनुसार जसरथ ने अली शाह का वध किया और ज़ैनुल आबिदीन विजयी होकर कश्मीर में दाखिल हुआ। इसी प्रकार जोन राज के अनुसार जैनुल आबिदीन ने 1420 ई० में तख्त की प्राप्ति कर 1459? ई० तक राज्य किया।

ज़ैनुल आबिदीन से पूर्व अली शाह (1413-1419) के काल में हिन्दुओं की दुर्दशा का वर्णन भी जोन राज ने सविस्तार किया है। इसके अनुसार सुह भट्ट ने जो मुसलमान होकर राजा अली शाह का मन्त्री बना था, हिन्दुओं को दबाने और उन पर जुल्म ढाने में कोई कमी न की।

इस वर्णन के अनुसार धार्मिक कृत्यों, नाग उत्सवों पर पाबन्दी लगां दी गई। दबाव इस हद तक बड़ा कि हिन्दुओं को अपना धर्म बचाने के लिए अपने आप को जला डालने, नदियों में डुबो देने और पहाडों से अपने को गिरा कर मारने के सिवा कोई चारा न रहा। हज़ारों ब्राह्मण ज़ैली मार्गों (By Passes) से भाग गए। सामाजिक जीवन अस्त व्यस्त हो गया। चिन्ता और भूख के कारण जीवन दुःखी हो गया। कई लोग तपती धूप और कम खुराक के कारण मरे और इस तरह जीने की मुसीबत से बच गए। कुछ लोग भीख मांग कर भारत के कई प्रदेशों तक पहुंचे। कुछ ब्राह्मण मुस्लिम वेशभूषा धारण कर अपने परिवार के लोगों को ढूंढने निकल पड़े। लोग दाने-दाने को मुहताज हो गए। यहां पर यह कहना उचित रहेगा कि जोनराज की राजतरंगिनी के अनुसार यह सब कुछ उस समय हुआ जब मीर सय्यदअली हमदानी कश्मीर छोड़ कर हमदान चले गए थे और सिकन्दर (कश्मीर का शासक) की मृत्यु हो चुकी थी।

मध्य एशियाई मंगोल आक्रमणकारी 'दुलचू' के काश्मीर पर आक्रमण का हाल भी जोनराज ने संक्षेप में दिया है। कई मास तक इस आक्रमणकारी ने सभी कश्मीरियों को लूटा और क़त्लो-ग़ारत का बाज़ार गरम किया। कई महीनों में प्राप्त लूट का माल लेकर और पचास हज़ार कश्मीरियों को क़ैदी बना कर जब वह देवसर (पीरपंचाल के पास एक गांव) के मार्ग से वापिस हुआ तो उसे एक बर्फानी तूफान ने आ घेरा और लश्कर समेत उसका अन्त हो गया। दुलचू के हमले के बाद के कश्मीर का दर्दनाक चित्र जोनराज इस प्रकार प्रस्तुत करता है :-

अनाज रहित, खेतों में खेती के बिना कश्मीर जिसे अपवित्र कर दिया गया था एक महा विनाश का चित्र उपस्थित कर रहा था। यहां इस बात की ओर संकेत करना उचित रहेगा कि कुछ फारसी विद्वानों ने गलती से 'कन्दहार' को दुलचू की राज्य परिधि में सम्मिलित किया है किन्तु वास्तव में यह क़न्दहार नहीं अपितु गांधार है जो उस समय दुलचू के आधीन था। दुलचू एक मंगोल था और उसका असली नाम दुरुकचन था जो चीनी भाषा में (Du-lu-hau-chi) हुआ और यही दुलचू बना।

जोनराज अपनी रचना में वुप्प देव राजा का भी ज़िक्र करता है। इस राजा ने 1171 ई० से 1181 ई० तक कश्मीर पर राज किया। इस राजा के सम्बन्ध में कुछ किंवदन्तियां लोगों में आज तक प्रचलित हैं। कहते हैं कि एक बार यह राजा डल की सैर करने के लिए एक नौका में भ्रमण कर रहा था। इसी बीच जब नौका एक गहरे स्थान पर आ गई तो उसने अपनी अंगूठी डल में डाल

दी और जिस जगह नौका से अंगूठी गिराई वहां एक निशान डाल दिया जब किसी ने राजा से इसका कारण पूछा तो उसने कहा कि वापसी पर इसी निशान के अनुसार अंगूठी को जल से बाहर निकाला जाएगा। एक और घटना भी आज तक चली आ रही है वह यह कि राजा के पास कुछ छोटी सुन्दर कंकरियाँ मौजूद थीं। उसने अपने एक नौकर को आज्ञा दी कि इन कंकरियों को दूध पिलाता रहे। सेवक हैरान। आखिर उसने राजा से इसका कारण पूछा तो राजा ने कहा कि दूध पीने से यह पत्थर मोटे, हो जाएंगे। ज़ाहिर है कि ऐसा राजा जनता की क्या भलाई कर सका होगा।

जोनराज ने दो शिलालेखों का भी ज़िक्र किया है जिससे पता चलता है कि इतिहास लेखन के लिए उसने उपलब्ध सामग्री का अच्छा उपयोग किया है। इन शिला लेखों में पहला शिला लेख 'तायर' स्थान पर था इस पर राजा परमानन्द देव का नाम खुदा था। इस राजा ने 1155 से 1164 ई० तक शासन किया और यह शिलालेख 1157 में स्थापित किया था। "कूठियार" (कपटेश्वर-कल्हण) का नाम खुदा है। इस बादशाह ने 1355 ई० से 1373 ई० तक कश्मीर पर शासन किया। शिलालेख 1369 ई० में स्थापित हुआ है। इस बादशाह ने उद्भाण्डपुर, सिन्ध, गांधार, शिंग, ग़ज़नी, अष्टनगर, पुरुषवीर, नागनहार (आज का जलालाबाद) को जीता था।

जोनराज ने कोटारानी के अन्दरकोट में शरण लेने, शिवरात्री के दिन 1339 ई में उदयन देव राजा की मृत्यु, शाहमीर द्वारा कोटा रानी को विवश करने और उसकी आत्महत्या का भी वर्णन किया है। वाक़ाते कश्मीर और तारीख हसन के अनुसार कोटा रानी उसी रात आत्म हत्या करती है जब शाहमीर उसे अपने शयन कक्ष में आने को कहता है। वह अपनी अन्तडियां उसे दिखा कर समाप्त हो जाती है। किन्तु इस सम्बन्ध में "स्टाइन" का मत है कि कोटारानी को शाहमीर ने ही क़त्ल किया।

कुछ भी हो जोनराज एक ऐसा इतिहासकार है जो तथ्यों को बड़ी सफाई और हिम्मत के साथ सच्चाई के आधार पर प्रस्तुत करता है। वह किसी राजा का पक्षधर नहीं। हां जहां वह खूबियां देखता है वहां वह मनोमुग्ध हो कर प्रशंसा करने लगता है। जोनराज की विद्वता और उसका भाषा ज्ञान अन्य लोगों के लिए एक उदाहरण उपस्थित करता है। लगता है कि तथ्य समेटने के लिए उसने विशेष स्थानों का भ्रमण किया था और अन्य पुस्तकों से सामग्री प्राप्त की थी। जिस काल का वह स्वयं साक्षी है उसे उसने विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है।

राजतरंगिनी (जोनराज कृत) की श्लोक संख्या 976 है। यह संख्या शारदा लिपि में लिखित पाण्डुलिपि की है। शारदा में सात पाण्डुलिपियां उपलब्ध हुई हैं। अंत में यह कहना बहुत ज़रूरी है कि इस पुस्तक का संपादन श्री कंठ कौल ने बड़े परिश्रम से किया है। उन्होंने श्लोकों में आई अशुद्धियों आदि के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। इस ग्रन्थ को विश्वेश्वरानन्द संस्थान द्वारा 2024 विक्रमी को प्रकाश में लाया गया है। श्री कंठ कौल कश्मीर के एक सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान थे। अंग्रेज़ी पर उन्हें अधिकार प्राप्त था। उन्होंने ग्रन्थ की भूमिका में कई महत्वपूर्ण बातों का वर्णन किया है।

सम्पर्क : *मकान नं० 207, वार्ड नं० 12, उधमपुर - 182 101*

''प्राचीन संस्कृत साहित्य एवं आभूषण सज्जा''

☐ *डॉ० सुषमा सरल*

सामाजिक जीवन में शरीर को रमणीय बनाने की प्रक्रिया सदा से विशेष महत्त्वपूर्ण रही है। इस उद्देश्य से शरीर की ब्राह्यत: स्वच्छता करना, उस पर लेप या चूर्ण लगाना, केश संवारना, अलंकार धारण करना आदि सुसंस्कृत नागरिक के कार्य रहे हैं। प्राचीन काल से ही भारत इस प्रवृत्ति में अग्रणी रहा है। सौन्दर्य प्रसाधन के द्वारा अपने ऐश्वर्य, अहंभाव और प्रतिष्ठा के प्रदर्शन करने का अभिप्राय भी रहता है। प्रकृति ने जो रूप-रेखा मानव को प्रदान की है, वह अपने आप में भले ही सुन्दर हो, पर मानव ने कभी प्रकृति की स्वाभाविक देन से सन्तोष नहीं किया है, अन्यथा अनुलेपन, गन्धवास, अलंकार आदि का कभी आविष्कार ही नहीं होता।[1]

सिन्धु सभ्यता के युग से ही स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध अलंकारों के प्रति अभिरूचि रखते आये हैं। शरीर का प्रत्येक अंङ्ग जहां किसी विधि से अलंकार लटक सकते हो तथा जहां से अलंकार देखे जा सकते हो, किसी-न-किसी प्रकार अलंकृत होकर रहा। कभी-कभी तो अलंकार पहनने मात्र के लिए नाक या कान में छेद तक भी कर लिया गया।

अलंकार प्राय: बहुमूल्य होते थे। साधारणता तीन उद्देश्यों से आभूषण धारण किये जाते थे। शरीर को अधिक सुन्दर बनाने के लिए, दूसरों को प्रभावित करने के लिए कि पहनने वाले का वैभव कितना अधिक है तथा अपने को अधिक सौभाग्यशाली बनाने के लिए। इनमें सर्वप्रथम सौन्दर्य का ही स्थान था। जहां तक आभूषणों के द्वारा सौन्दर्य साधन की समस्या है, वह सरल आभूषणों से ही संभव है, यदि वे सुरूचिपूर्ण ढंग से बनाये गये हो और उन को कलात्मक ढंग से धारण किया गया हो। इसके लिए पुष्पों के बने हुए आभूषणों का सर्वाधिक महत्त्व है। इनमें नित्य अभिनव शृंगार और आभूषण के साथ ही मनोरम गन्ध की विशेषता होती है। सबको पुष्प अनायास ही सुलभ भी हो सकते थे :-

''अशोक निर्भर्त्सित पद्मरागमाकृष्ट हेनद्युति कर्णिकारम्।
क्लापी कृत सिन्धु वारं वसन्त पुष्पाभरण वहन्ती ॥[1]''

सजाने के लिए यदि आभूषणों के प्रति अभिरूचि होती थी तो दीन-हीन होने पर भी कई व्यक्ति मिट्टी का ही आभूषण पहन सकता था। सस्ते आभूषणों के साधनों में पुष्प और मिट्टी के अतिरिक्त घोघों का नाम लिया जा सकता है। धनाढयता की उच्चता प्रदर्शित करने के

1. *कुमार संभव, सर्ग-3, श्लोक-53.*

लिए बहुमूल्य रत्नों और धातुओं के आभूषण धारण करने का प्रचलन रहा है। भारत अनेक प्रकार के रत्नों और बहुमूल्य धातुओं, सोने तथा चांदी के लिए प्रसिद्ध रहा है। विभिन्न प्रदेशों में इनके असंख्य उद्भव रहे हैं।

सौभाग्य के लिए आभूषण पहनने की रीति का उल्लेख वैदिक साहित्य से ही मिलता है। अथर्ववेद के 19वें काण्ड के 26वें अध्याय के प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि :- ''अग्नेः प्रजातं परियद्धिरण्यममृतं दध्रे अधिमर्त्येषु। य एनद वेद स इदेन महति जरा मृत्यु र्भवति यो बिभर्ति।'' अर्थात् अग्नि से उत्पन्न होने वाला सुवर्ण और अमृत रूप से मरणधर्मी मनुष्यों में व्याप्त सुवर्ण के इन रूपों को जानने वाला पुरुष ही इसके धारण करने का अधिकारी है। जो पुरुष इस स्वर्ण को आभूषण रूप में धारण करता है वह वृद्धावस्था में मरने वाला होता है। गजमुक्ता धारण करने से पुत्र की प्राप्ति होती है, विजय मिलती है और पहनने वाला स्वस्थ एवं पवित्र रहता है।[1]

नाट्यशास्त्र में पहनने की दृष्टि से भारतीय आभूषण चार कोटियों में विभक्त हैं यथा :-

चतुर्विधं तु विज्ञेयं नाट्ये ह्याभरणं बुधैः।
आवेध्यं बन्धनीयं च क्षेप्यमारोप्यमेव च॥
आवेध्यं कुण्डलादीह यत्स्याच्छ्रवण भूषणम्।
आरोप्यं हेमसूत्रादि हाराश्च विविधाश्रयाः॥
श्रोणी सूत्रा ङ्गदा मुक्ता बन्धनीयानि सर्वदा।
प्रक्षेप्यं नूपुरं विद्या द्वस्त्रा भरणेव च।[2]

अर्थात् आवेध्य, बन्धनीय, प्रक्षेप्य और आरोपक जो शरीर के किसी अंग मात्र से लटके हों पर अन्य अंगों का स्पर्श न करते हों, साधारणतः किसी अंग का छेद करके लटकाये गए हों, वे आवेध्य हैं, जैसे कुण्डल और श्रवण भूषण। जो किसी अंग में बांधे और कसे जाते हैं, वे बन्धनीय हैं, जैसे श्रोणिसूत्र, अगंद, मुक्ता आदि। प्रक्षेप्य कोटि के आभूषणों में चलते फिरते प्रक्षेप होता है। आरोप्य अलंकार वे हैं, जो प्रायः गले में या शरीर के किसी और अंग में लटकाये जाते हैं, जैसे हार आदि। नकली आभूषणों की भी कमी नहीं थी। इस विषय में ''कथासरित सागर'' से ज्ञात होता है कि नकली मणि एवं स्वर्ण के आभूषण भी बनते थे :-

कांच स्फटिक खण्डा हि नानारागोपरञ्जिताः।
रीति बद्धा इमे नैते मण्यो न च काञ्चनम्। 179।[3]

इसीलिए मनु ने आभूषण बनाने वाले को प्रकाश वंचक की उपाधि दी है।[4] आभूषण बनाने वालों की चौर्यवृत्ति की सैंकड़ों विधियों का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। सारा

---

1. *बृहत्संहिता, 81 22.*
2. *नाट्यशास्त्र, अध्याय 21, श्लोक 12 14*
3. *कथा सरित सागर.*
4. *मनुस्मृति, अध्याय 9, श्लोक 25*

चौदहवां अध्याय इसी विषय से सम्बन्धित है यथा: ''सौवर्णिक: पौर जान पदानां रुप्य-सुवर्णमावेशनीभि: कारयेत् .... तेन सुवर्णराजतानि भाण्डानि क्षी यन्ते न चैषां किंचिदवरुगणं भवति''[1] पर्यन्त इसी बात का वर्णन किया गया है।

आभूषणों के पहनने से लोगों को काम करने में बाधा पड़ सकती थी। दो-चार छोटे-मोटे आभूषणों को पहनने से कोई विशेष अड़चन भले ही न होती रही हो, पर सिर से पैर पर्यन्त आभूषण धारण कर लेने पर काम करना प्राय: असंभव सा ही था और आभूषण धारण कर लेने वाला मात्र प्रदर्शिनी के योग्य ही बन जाता था। आभूषणों के कारण उत्पन्न हुई इसी असुविधा को देखकर नाट्य शास्त्र में भरतमुनि ने कहा है :-

''खेदं जनयते तद्धि सव्यायत विचेष्टनात।
गुरु भावावसन्नस्य स्वेदो मूर्छा च जायते। 4।
गुर्वा भरण सन्नो हि चेष्टां न कुरूते पुन:।
तस्मात्तनुत्व सुकृतं सौवर्ण भूषणं भवेत॥
रत्न वज्ज तुबद्धं वा न खेदजननं भवेत।
स्वेच्छया भूषणविधिर्दिव्यानामुपदिश्यते॥ 49॥[2]

अर्थात् नाटक या नृत्य प्रदर्शन में बहुत से आभूषण नहीं पहनने चाहिए। इससे खेद उत्पन्न होता है, अलंकारों के गुरूभार से चेष्टायें नहीं हो पाती हैं, कभी-कभी तो इसी भार से स्वेद और मुर्च्छा तक सम्भव हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में साधारण कल्पना हो सकती है कि प्राचीन कालीन जिन असंख्य आभूषणों का परिचय मिलता है, वे केवल विशेष अवसरों पर ही पहने जाते होंगे, पर कलाकारों के कल्पना जगत् में इन आभूषणों से समन्वित व्यक्ति का ही सदा उदय हुआ है, तभी तो काव्य, चित्र और मूर्तियों की रचना में आभूषणों की भरमार ही दिखाई पड़ती है। इस प्रवृत्ति का एकमात्र कारण था आभूषणों की सर्वोच्च प्रतिष्ठा।

1. शिर के आभूषण :- सिन्धु सभ्यता के युग में सिर को मिट्टी, हाथी दांत, सोने, चांदी अथवा तांबे के बने तिकोने से सजाया जाता था। तिकोनों की ऊँचाई 2.45 इंच और व्यास 2 ईंच होता था। इनके छेदों से होकर केशपाश लटकाए जाते थे। स्त्रियां सिर में फूल भी खोंसती थीं। मस्तक पर सोने की पट्टी बांधने का प्रचलन था। अमर कोश में लिखा है कि पत्र-पाश्या नामक आभूषण ललाट पर धारण किया जाता था। यह एक प्रकार का स्वर्ण-पत्र ही था। इसके सिरे पर छेद होते थे और छेदों से गहने लटकाये जाते थे। जो लोग सिर पर टोपी पहनते थे, वे इस आभूषण को नहीं धारण करते थे। टोपी के अतिरिक्त सिर पर पंखे की भांति शिरोवस्त्र बांधने का प्रचलन स्त्रियों में था। सिर में कंघी खोंसने की रीति कुछ शौकीन स्त्री और पुरुष में भी थी।

---

1. *अर्थशास्त्र, अध्यक्षप्रचार, प्रकरण - 14.*
2. *नाट्य शास्त्र, अध्याय 21, श्लोक 47 49 तक।*

वैदिक काल में सिर के बालों के गुच्छों को कसने के लिए करीर नामक अलंकार पहना जाता था। स्त्रियां बालों में फूल भी लगाती थीं। कुम्ब (कुम्भ) नामक आभूषण सिर पर धारण किया जाता था जिसकी सूचना अर्थववेद से मिलती है :-

''क्लीबं-क्लीबं त्वाकरं वध्रे वध्रिं त्वाकर मनसारसं त्वाकरम् कुरीरमस्य शीर्षणि कुम्ब चाधिनिदहमसि''।[1] अर्थात् हे शत्रो! मैंने तुझे इस कर्म द्वारा पुंसत्व रहित बना दिया है, तू वीर्य-शून्य हो चुका है। इस नपुंसक शत्रु के सिर पर हम केशों को रखते हुए स्त्रियों के आभूषण कुम्ब को धारण कराते हैं। इसी युग से राजाओं के लिए सदा ही सिर पर स्वर्ण-मुकुट धारण करने का प्रचलन रहा। महाभारतकालीन राजाओं के सिर पर जिन मुकुटों का वर्णन मिलता है, उसमें स्वर्ण और रत्न भी जड़े रहते थे। शिशुपालवध के प्रथम अध्याय में वर्णित है कि मुकुटों के शिखर पर मणि होते थे। गुप्तकाल में सिर पर के अलंकारों के नाम चूड़ामणि, मुक्त गुण और किरीट मिलते हैं।

नाट्य शास्त्र के 21वें अध्याय में पुरुषों के लिए चूड़ा-मणि और मुकुट सिर के अलंकार थे स्त्रियों के केश-विन्यास के अनुसार शिखापाश, शिखाजाल, पिण्ड पात्र आदि रूपों में होते थे। इनके अलंकार चूड़ामणि, मकरिका, मुक्ताजाल और गवाक्ष होते थे :-

''चूड़ामणि: समकुट: शिरसो भूषणं स्मृतम्।
कुण्डलं मोचकं कीला कर्णा भरण मिष्यते । 16।
मुक्तावली हर्षकं च सूत्रकं कण्ठ भूषणम्।
वेतिकाङ्गुलिमुद्रा च स्यादङ्गुलिवि भुषणम्। 17।
हस्तली वलयं चैव बहुनाली विभूषणम्।
रूचकश्चूलिका कार्या मणि बन्ध विभूषणम्। 18।
केयुरे अङ्गदे चैव कर्पूरोपरिभूषणे।
त्रिस रश्चैव हारश्च तथा वक्षोविभूषणम्। 19।
व्यालम्बि मौक्तिको हारो माला चैवाङ्ग भूषणम्।
तलकं सूत्रकं चैव भवेत्कटि विभूषणम्। 20।
शिखापाशं शिखाव्याल: पिण्डी पत्रं तथैव च।
चूड़ा मणि र्मकरिका मुक्ताजाल गवांक्षिकम्। 22।[2]''

कादम्बरी (पृष्ठ 229) में बाण भट्ट ने राजाओं के सिर पर उष्णीष (पगड़ी) उसके ऊपर तथा सबके ऊपर शेखर धारण करने की रीति का वर्णन किया है। कादम्बरी से ही ज्ञात होता है कि स्त्रियां ललाट के ऊपर सीमन्त के आरम्भ स्थान पर एक मणि पहनती थी। इसका नाम चूड़ामणि था और यह सीमन्त चुम्बी होता था। रघुवंश महाकाव्य में लिखा है कि स्त्रियों की मौलि में मुक्तागुणोनन्द्ध होती थी :- ''तेऽस्य मुक्ता गुणो नन्द्धं मौलिमन्तर्गत स्त्रजम्।

---

1. *अथर्ववेद, काण्ड-6, अध्याय - 138, मन्त्र - 3.*
2. *नाट्य शास्त्र, अध्याय-21, श्लोक - 16 से 22।*

प्रत्यूपु: पद्मरागेण प्रभा मण्डल शोभिना।[1]23

मेघदूत के पूर्वभाग से पता चलता है कि स्त्रियां अपनी वेणियों में स्वर्ण-माला गूंथती थीं। अलकों में मुक्ताजाल गूंथने का प्रचलन भी था :-

तस्योत्सडमे प्रणयिन इव स्रपस्तगंगा दुकूलां
न त्वं दृष्टवा न पुन ल्लकां ज्ञास्यसे कामचारिन।
या व: काले वहति सलि लोद्‌गार मुच्चै र्विमाना
मुक्ता जाल ग्रथित मलकं कामिनी या भ्रवृन्दम्।[2]65

धातुओं के अतिरिक्त प्रकृति की अन्य मनोरम वस्तुओं से सिर का श्रृंगार होता था। भागवत (10-14-47) में कृष्ण के सिर पर मोरपंख धारण करने का वर्णन है। महापुराण (28.31) एवं रघुवंश के अनुसार जहां धनी लोग स्वर्ण-तन्तु से अपने बालों को बांधते थे वहां ग्वाले वन की लताओं से अपने जटा-जूट को बांध लेते थे :-

लता प्रतानो दग्रथितै: स केशैरधिज्य धन्वा विचचारदावम्।
रक्षापदेशान्मुनि होम धेनो र्वन्यान्वि नेष्यत्रिव दुष्ट सत्त्वान्।[3]8

2. फूलों के आभूषण :- सिर में फूलों को आभूषण रूप में धारण करने तथा धातुओं के आभूषणों की तरह फूलों के बने आभूषण पहनने की रीति रसिक नागरिकों और वन्य जीवन बिताने वाले लोगों में समान रूप से रही है। कादम्बरीकार का कथन है कि राजाओं का मुकुट तक मालती कुसुम का बन सकता था। रघु-रघुवंश श्लोक संख्या (17.23, 16.50) में उल्लिखित है कि राजा की मौलि में पुष्पों की माला गूँथी जाती थी। उत्तरमेघ से ज्ञात होता है कि स्त्रियां अलक में बालमुकुन्द, चूड़ापक्ष में नव कुरवक और सीमन्त में नीप के पुष्प संजोती थीं :-

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसव रजसा पाण्डुतामानने श्री:।
चूड़ापाशे नवकुरबंक चारू कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।[4]

ऋतु संहार में फूलों के आभूषणों का विस्तृत विवरण मिलता है। श्लोक संख्या (2 21) में कहा गया है कि स्त्रियां वर्षा में नई केसर केतकी और कदम्ब के नये फूलों की मालाएं गूँथ कर सिर पर धारण करती थीं :-

---

1. *रघुवंश, सर्ग-17, श्लोक 23.*
2. *मेघदूत, पूर्वभाग, श्लोक-65.*
3. *रघुवंश, सर्ग - 2, श्लोक - 8.*
4. *मेघदूत, उत्तर मेघ, श्लोक -2.*

माला: कदम्ब नवकेसर केतकीभि
रायोजिता: शिरसि बिभ्रति योषितोऽद्य।
कर्णान्तरेषु ककुभ द्रुम मञ्जरीभि-
रिच्छानुकूल रचितान वनसंकांश्च।[1]

पुरुष भी अपनी प्रेयसियों के सिर की शोभा के लिए मालती, यूथिका की कलियां और वकुल पुष्प की माला बनाते थे :-

शिरसी बकुल मालां मालती भि: समेतां
विकसित नव पुष्पै यूथिका कुडमलै श्च।
विकच न व कदम्बै: कर्णपूरं वधूनां
रचयति जल दो घ: कान्तवत काल एष:।[2]

बसन्त में स्त्रियों का सिर चम्पक से सुवासित होता था उनके अलकों में अशोक और नवमल्लिका के पुष्प सुशोभित होते थे :-

''ईषत्तु षारै: कृतशीत हर्म्य:
सुवासितं चारू शिरश्च चम्प कै:।
कुर्वन्ति नार्योऽपि वसन्तकाले
स्तनं सहासं कुसु मै र्मनो हरै:।[3]

केशपाश में नवकुर वक-पुष्प भरे होते थे। वर्षा में पुष्पों से सिर के लिए अवतंस बनाया जाता था। शरद ऋतु में विकुंचित केशों में स्त्रियां नव मालती कुसुम भरकर रखती थीं :

उमाऽपि नीलाऽलक मध्य शोभि विस्त्रं सयन्ती नवकर्णिकारम्।
चकार कर्णच्युत पल्लवेन मूर्ध्ना प्रणामं वृषभ ध्व जाय।[4]

के शान्नि तान्त घन नील विकुञ्च ता ग्रा-
नापूरयन्ति वनिता नव मालतीभि:।-
कर्णेपु च प्रवर काञ्चन कुण्ड लेपु नी लोत्पलानि
विविधानि निवेश यन्ति।[5]

हेमन्त में रात्रि के समय में भी सिर पर पुष्पों की माला धारण की जाती थी जिसमे सोते समय उनकी सुगन्ध का आनन्द लिया जा सके :-

---

1. *ऋतु संहार, सर्ग-2, श्लोक-21.*
2. *.. .. - 2 .. - 25.*
3. *.. .. - 6 .. - 3.*
4. *कुमार संभव, सर्ग - 3 श्लोक - 62.*
5. *ऋतुसंहार, सर्ग 2, श्लोक 19.*

निर्माल्यदाम परिमुक्त मनोज्ञगन्धं
मूर्ध्नोऽपनीय घन नील शिरोरूहान्ता:।
पानोन्नत स्तन भरा नत गात्र यष्टय:
कुर्वन्ति केशरच नाम परास्त रूण्य:।[1]

शिशिर में केशों के बीच कुसुम निवेशित किया जाता था :-

मनोज्ञ कूपसिक्र पीड़ित स्तना :
सराग कौषेयक भूषितोरव:।
निवेशितान्त: कुसुमै: शिरोरू है-
र्विभूषयन्तीव हिमागमं स्त्रिय:।[2]

पुरुष भी सिर पर पुष्पों की माला धारण करते थे। ललाट के दोनों ओर लटकती हुई कुटिल अलकों की माला दसवीं शती में बनाई जाती थी और चिकुर भार में कुसुम राशि बाँधी जाती थी:-

कुटिलऽलकानां माला ललाट फलका ग्रसंङ्गिनी रचिता।
तच्छशिम्बिस्यो परि वर्तते मध्ये कृष्ण। सारङ्ग:॥ 20
घनसार तारनयनाया गूढ़ कुसुमोटच यश्चि कुर भार:।
शशि राहुमल्ल युद्धमिव दर्शित मेण नयना याम् ॥21[3]

अमर कोष में विविध प्रकार की मालाओं के नाम मिलते हैं। इनके अनुसार केश के मध्य की माला गर्भक, शिखा पर्यन्त लटकने वाली माला प्रभ्रष्टक, सिर पर सामने की ओर पहनी हुई माला ललामक, कण्ठ से सीधे नीचे लटकने वाली प्रालम्ब, छाती पर तिरछी पड़ी हुई माला वैकक्षिक तथा शिखा में गुंथी हुई माला आपीड और शेखर कहलाती है।

कानों के आभूषण :- सिन्धु घाटी की सभ्यता से ही कानों में आभूषण पहनने की रीति है। सम्भवत: उस समय लोग कानों में कनफूल और कुण्डल पहनते थे। वैदिक काल में कान में पहनने के लिए कर्ण-शोभन नामक अलंकार का उल्लेख मिलता है। व्रात्यवर्ग के लोग कान में प्रवर्त्त पहनते थे :- ''विद्युत पुंश्चली, स्तन यिलुर्भागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषु रात्री केशा हरितौप्रवर्तो कल्मलिमणि''[4] राजाओं के कर्णशोभन में मोती लगे होते थे।

---

1. *ऋतु संहार, सर्ग-4, श्लोक-16.*
2. *,, ,,-5, ,, - 8.*
3. *कर्पूरम ञ्जरी, अंक-2, श्लोक - 20. 21.*
4. *अथर्ववेद, काण्ड-15, अध्याय-2, मन्त्र-25।*

इसके पश्चात् के युग में कानों में कुण्डल पहनने का प्रचलन सदा ही रहा है:-

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभि वन्दनात्॥
वैणवीं धार येद्यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम्।
यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले॥

प्रसरसि भव विक्लवा किमर्थं प्रचलित कुण्डल घृष्ट गण्डपार्श्वा। विटजन नखघट्टितेव वीणा जलधर गर्जित सार सीव॥

चूड़ा मणि: समकुट: शिरसो भूषणं स्मृतम्।
कुण्डलं मोचकं कीला कर्णाभरण मिष्यते॥
उभयोरपि श्रवण योर्निवेशितं रत्न कुण्डलयुगं तस्या:।
तद्वदन मन्मथ रथो द्वाभ्यामिव च क्राश्यांचङक्रमित:॥[1]

कुण्डल रजत और स्वर्ण के बनते थे:-

तडिल्ल ताशक्रधनु विंभूषिता: पयो धरास्तोय भराव लम्बिन:।
स्त्रि यश्च काञ्ची मणिकुण्डलोज्ज्वला हरन्ति चेतो युगपत्प्रतसि-नाम॥[2]

नाना रत्न विचि त्राणि दन्तपत्राणि चैव हि।
कर्ण यो भूषणं हयेतत्कर्ण पूरस्त थैव च।[3]

कुण्डल चलते समय हिलते रहते थे और कपोल पर उनसे संघर्षण होता था :-

''प्रसरसि भवविकलवा किमर्थं प्रचलित कुण्डल घृष्ट गण्डपाश्विा,
विटजन नख घट्टि तेव वीणा जलधरगर्जित सार सीव।[4]

कुण्डल के अतिरिक्त कान के अन्य अलंकारों के नाम कर्णिका, कर्णवलय, पत्र-कर्णिका, कर्णमुद्रा, कर्णोत्पल, कर्णपूर आदि नाट्यशास्त्र में मिलते हैं।

कर्णिका कर्णवलयं तथा स्यात्पत्र कर्णिका
कुण्डलं कर्ण मुद्रा च कर्णोत्कीलकमेव च।25
नाना रत्न विचि त्राणि दन्तपत्राणि चैव हि
कर्णयो भूषणं हयेतत्कर्णपूरस्त थैव च।[5]26

---

1. *रामायण, किष्किन्धा काण्ड, श्लोक-22, मनुस्मृति-4-36.*
मृच्छकटिक, 1.24, नाट्यशास्त्र, 21-16, कर्पूरमञ्जरी-2-18.
2. *ऋतु संहार, सर्ग-2, श्लोक-20.*
3. *ना० शा०, अ०-21, श्लोक-26/5. मृच्छकटिक, अंक- 1, श्लोक - 24.*
5. *नाट्यशास्त्र, अ०-21, श्लोक-25-26.*

प्राय: इन्हीं आभूषणों के नाम गुप्तकाल में भी मिलते हैं। बाणभट्ट[1] ने कर्णपाश नामक अलंकार की भी चर्चा की है। यह हेम ताली पट्ट से बनता था और सम्भवत: कर्णोत्पल के नीचे होता था। कान में मरकतमणि के जो कुण्डल पहने जाते थे। उनमें लगे हुए सोने के पत्ते हिलते थे। कुछ मणि कुण्डलों में मकर की आकृति बनी रहती थी। वन के लोग कान में मणिकर्णिका पहनते थे। दन्तपत्र नामक आभूषण कान में अवसक्त होता था:-

विदग्ध लीलोचित दन्त पत्रिका विधित्सया नून मनेन मानिना।
न जातु वैनाय कमेक मुद्धतं विषाण मधापि पुन: पुरोहति॥[2]

कानों के आभूषण पत्रों और पुष्पों से भी बनाये जाते थे। ग्रीष्म ऋतु में कान पर शिरीष के पुष्प रखे जाते थे :-

स्वेदानु विद्धार्द्रनख क्षता डेके भूयिष्ट संदष्टशिखं कपोले।
च्युतं न कर्णादपि कामिनीनां शिरीष पुष्पं सहसा पपात॥[3]

वर्षा ऋतु में ककुभ का मंजरी से कान के लिए अवतंस बनाया जाता था :-

''माला: कदम्बन व केसर केतकी भिरायोजिता: शिरसि बिभ्रति योषितोऽथ कर्णान्त रेषु ककुभ द्रुम मञ्जरी भि रिच्छा नु कूल-रचितान ततसकांश्च''॥ [4]21

शरद् में कानों में नीलोत्पल सुशोभित होता था :-

केशान्नितान्तघन नील विकुञ्चिताग्राना पूर यन्ति वनिता नव मालतीभि:।
कर्णेषु च प्रवर काञ्चन कुण्डलेषु नीलोत्पलानि विविधानि निवेशयन्ति।
आरुढ़: पतित इति स्वसम्भवोऽपि स्वच्छानां परि हरणी यता मुपैति।
कर्णैभ्यश्च्युत मसितोत्पलं वधूनां वी पीभिस्तट मनुयन्निरा सुराप:॥[5]!

वसन्त ऋतु में कनेर के फूल खोंसे जाते थे :-

कर्णेषु योग्यं नवकर्णिकारं चलेषु नीलेष्वलकेष्व शो कम।
पुष्पं च फुल्लं नवमल्लिकाया: प्रयाति कान्तिं पमदाजना नाम।[6]

कर्णपूर के लिये अनेक प्रकार के पत्र और पुष्प उपयोगी होते थे। कुमुद के दल से कर्णपूर बनते थे। मल्लिका-मञ्जरी का कर्णपूर बनाने के लिए उसे पहले लवली के फल के द्रव में

---

1. *कादम्वरी, पृष्ठ-188,101,11, 206.*
2. *शिशुपालवध सर्ग-1 श्लोक -60.*
3. *रघुवंश, सर्ग-16, श्लोक-48.*
4. *ऋतु०, सर्ग-2, श्लोक-21.*
5. *ऋतु संहार, सर्ग 3, श्लोक-19.*
6. *ऋतु संहार, सर्ग-6, श्लोक-6.*

भिगोया जाता था। चन्दन और तमाल के पल्लव कान में खोंसे जाते थे। अशोक के पल्लव का भी कर्णपूर बनाया जाता था। लवली की पत्तियां कर्णमूल में खोंसी जाती थीं :-

येनोद्दुच्छद्विस किसलय स्निग्ध दन्ताङ्कुरेण
व्याकृष्टस्ते सुतनु लवली पल्लत: कर्णमूलात।
सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचा वारणाना विजेता
यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्यजात:।[1]

गांव की स्त्रियां धान के बालों से शरद ऋतु में भी अवतंस बना लेती थीं।

नाक के आभूषण :

प्राचीन भारत में नाक में कोई भी आभूषण नहीं पहना जाता था क्योंकि प्राचीन साहित्य में नाक के आभूषण के सम्बन्ध में कहीं कोई चर्चा नहीं की गई है। तत्कालीन चित्रों और मूर्तियों में भी कहीं किसी प्रकार का आभूषण नाक से सम्बद्ध नहीं दिखाया गया है। ऐसी परिस्थिति में यही कहा जा सकता है कि नाक के वर्तमान कालीन आभूषण-नकफूल और नथिया आदि इस्लामी संस्कृति की देन हैं। नथिया तो स्त्रियों के लिए सौभाग्य का चिन्ह ही मान ली गई है। रामायण में यह उल्लेख अवश्य मिलता है कि :-

लब्धार्था न पतीता च ले पयिष्यागि ते स्थगु।
मुखे च तिलकं चित्र जातरूपमय शुभम।[2]49

अर्थात् तेरे मुख पर सुन्दर और विचित्र सोने का टीका लगवा दूंगी और तू बहुत से सुन्दर आभूषण एवं दो उत्तम वस्त्र (लहंगा और दुपट्टा) धारण करके देवाङ गना के समान विचरण करेगी। इससे ज्ञात होता है कि मुख पर सोने का बना हुआ तिलक नामक आभूषण धारण करने की रीति थी। उस समय हारों में 1008, 504, 100, 64, 54, 32, 27, 24, 20, 10 लड़ियां होती थीं। इनके नाम क्रमश: इन्द्रच्छन्द, विजयच्छन्द, देवच्छन्द, अर्धहार, रश्मि, कलाप, गुच्छ, नक्षत्र-माला, अर्धगुच्छ, माणवक और अर्ध माणवक थे। यष्टियों की अन्य कोटियां शुद्धयष्टि, रत्नावली, अपवर्तक, सोपानक, मणिसोपानक आदि थीं। केवल गोती ही गोती सूत्र में एक लड़ी में गुँथे हों तो वह शुद्ध है। यदि शुद्ध यष्टि में ही बीच गें मणि गुंथा हो तो वह यष्टि है। स्वर्ण-जटित मणियां हों तो यष्टि रत्नावली बन जाती है। स्वर्ण-जटित मणियों के बीच-बीच में मोती पिरोये हों तो वह सोपानक-यष्टि है। यदि स्वर्ण-सूत्र में मोती पिरोये हों तो वह सोपानक यष्टि है। इसी के बीच-बीच में मणि हो तो वह मणि सोपानक है।[3]

---

1. *कुमार संभव, सर्ग-3, श्लोक-62, कादम्बरी, पृष्ठ-206, 216, 34, 274, एवं उत्तर रामचरित, अंक-3, श्लोक -15.*
2. *अयोध्याकाण्ड रामायण, अध्याय-9, श्लोक-49.*
3. *अर्थशास्त्र, 11वां अध्याय (अध्यक्ष प्रचार)*

नाट्यशास्त्र से भी कई हारों का परिचय मिलता है जो प्राय: उपर्युक्त कोटियों में समन्वित हो जाते हैं। भरतमुनि के अनुसार कुछ हार कण्ठ की शोभा के लिए हैं जिनको कण्ठ विभूषण कहा जाता था, ये हार निम्न प्रकार के थे:-

मुक्तावली हर्षकं च मूत्रकं कण्ठभूषणम्
त्रिसरचैब हारश्च तथा वक्षो विभूषणम् ।17/19
व्यालम्बिमौक्तिको हारो माला चैबाङ्गभूषणम्।
तलकं सूत्रकं चैव भवेत्कटिविभूषणम् ।20
त्रिवेणी चैव विज्ञेयं भवेद्वक्षो विभूषणम् ।27
मुक्तावली व्याल पङ्क्तिर्मञ्जरी रत्न मालिका ।31
रत्नावली सूत्रकं च ज्ञेयं कण्ठविभूषणम्।
द्विसरस्त्रिसरश्चैव चतु स्सरक एव च ।32
तथा शृङ्खलिका चैव भवेत्कण्ठवि भूषणम्।
नानाशिल्प कृताश्चैव हारा-वक्षो विभूषणम्।
मणि जालावनद्धं च भवेत् स्तनविभूषणम् ।34
द्वा त्रिं शच्च चतु: षष्टि: शत म॰ टोत्तर तथा ।38
मुक्ताहारा भवन्त्येते देवपार्थिव योषिताम्।[1]

अर्थात् मुक्तावली, व्यालयंक्ति, मंजरी, रत्नमालिका, द्विसर, त्रिसर, चतुस्सर, शंखलिका और हर्षक थे। वक्ष: स्थल की शोभा के लिए त्रिसर और हार थे। अत्यधिक लम्बे।

गले के आभूषण :

आभूषण सज्जा के लिए शरीर का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग गला है। गले में छोटे बड़े बीसियों हार तो एक साथ ही पहने जा सकते हैं। ऐसे हार गले में एक इंच से लेकर तीन फुट तक लटक सकते हैं। सिन्धु सभ्यता के युग से दो प्रकार के हार पहनने का पता चलता है--रत्नों को छेदकर गूँथा हुआ धातु की लड़ियों का बना हुआ। वैदिक काल में स्वर्ण एवं बहुमूल्य रत्नों के हार पहनने का प्रचलन मिलता है। वैदिक कालीन हार छाती पर लटकते थे। इन हारों के नाम इस पारकार थे:- रुक्म, निष्क तथा सुंका। मणियों का हार पहनने वाला व्यक्ति मणिग्रीव कहा जाता था:-

''हिरण्यकर्ण मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्ववेवरिवस्यन्तु देवा:।
अर्च्यो गिर: सद्य आजग्मुषी रोस्राश्चा कन्तू भयेप्वस्मे॥

''अंसेषु व ऋष्टय: पत्सु खादयों वक्ष: सुरुक्मा मरुतो रथे शुभ। अग्नि भ्राजसो विद्युतो गभस्त्यो: शिप्रा: शीर्ष सुवितता हिरण्ययी।[2]

---

1. *नाट्यशास्त्र, अध्याय-21, श्लोक-17 से 38 तक।*
2. *ऐतरेय ब्राह्मण, 22/3.*

निष्क पहनने वाला निष्क कण्ठ या निष्कग्रीव कहलाता था

देशात् देशात् समोऽइहानां सर्वासामाढय दुहितृणां।

दसाददात् सहस्त्रा रा या त्रेयो निष्ककंठय:।[1]

अर्थात् अत्रि के लड़के ने देश-देश से जमा की हुई दस हज़ार लड़कियों को जिनकी गर्दन में आभूषण पड़े हुए थे दान कर दिया। कुछ स्वर्णहारों में कमल के आकार के सौ लोलक होते थे। लोलकों में रत्न जड़े होते थे :-

''वज्रकिञ्जलका शतपुष्करा होतु:

तत्र होतु: पद्म बीज पुष्प माला धारणम्।

सर्वर्त्विजामधिकारा द्धोतुर्ग्रहणम्॥''[2]

प्राचीनकाल में मोती अधिक्ता से पाये जाते थे। अर्थशास्त्र से कई प्रकार के मोतियों का पता चलता है यथा:- ताम्रपर्णिका, पाण्डयक वाटक, पाशिक्य, कौलेय, चार्णेय, माहेन्द्र, कार्दमिक, स्रोतसीय, ह्रादीय, हैमवत इत्यादि। असंख्य प्रकार के हार बनाये जाते थे। हारों में सहस्त्रों मोती गुंथे होते थे। बड़े और छोटे मोती गूंथने के क्रम से शीर्षक, उपशीर्षक, प्रकाण्डक, अवघाटक तथा तरल प्रतिबन्धक कोटि की यष्टियां होती थीं। पूरे शरीर की शोभा बढ़ाने वाले हारों को देहभूषण कहा जाता था। कटि प्रदेश की शोभा बढ़ाने वाले हार तरल और सूत्रक थे। स्तन-विभूषण कोटि का हार मणिजाल से विशेष रूप से समायुक्त होता था। भरतमुनि ने मुक्ता हार में 32, 64 और 108 यष्टियां कही हैं। हार में लड़ियों की संख्या के लिए कोई अनिवार्य नियम नहीं था।

ऋतुसंहार के ग्रीष्म वर्णन में हार का जो महत्त्व दिखाया गया है उससे प्रतीत होता है कि हार से शरीर में शीतलता का संचार होता था :-

''कमल बन चिताम्बु: पाटलामोदरम्य: सुख सलिल निषेक: सेन्य-चन्द्रांशुहार:। ब्रजतु तव निदाघ: कामिनीभि: समे तो निशि सुललि तगीते हर्म्यपृष्ठे सुखेन।''28

''मनोहरै: चन्दनराग रक्तैस् तुषार कुन्देन्दुनि भैश्च हारै:।

विलासिनीनां स्तन शालिनी नाम लं क्रियन्ते स्तन मण्डलानि।2''

''काञ्चीगुणै: काञ्चन रत्नचित्रैर्नो भूषयन्ति प्रमदा नितम्बान्।

न नूपुरैर्हंसरुतं भजद्भि: पादाम्बुजान्यम्बुजकान्ति भाञ्जि।4''

''वापीजलानां मणिमेखलानां शशाङ्कभासां प्रमदा जनानाम्।

चूत द्रुमाणां कुसुमान्वितानां ददाति सौभाग्यमयं वमन्त:।।4''

स्तनेषु हारा: सितचन्दनार्द्रा भुजेषु सङ्ग वलयाङ्गदानि।

प्रयान्त्यन ङ्गातुरमान सानां नितम्बि नीनां जघनेषु काञ्च्य:।17'

---

1. *आश्वलायन श्रौतसूत्र, 9.9.5.*
2. *ऋग्वेद, मण्डल-1 एवं 5, 122 एवं 54, मन्त्र-14 एवं 11.*
3. *ऋतु संहार, सर्ग-6-4-1.*

गुप्तकाल में निष्क, मुक्तावली, ताराहार, हार-शेखर, हार, और हार यष्टि विविध प्रकार के हारों के नाम और पर्याय थे। तारों की भांति चमकते हुए छः मासे की गणियों के हार पहनने का उल्लेख दसवीं शती में मिलता है:-

''विचक्षणा कण्ठे तस्या: स्थापित: षाण्मासिक मौक्ति कानां
वरहारा:। सेवते तत्यंक्तिभि मुर्खचन्द्रं तारका निकर:। 17[1]

यह सारे हार प्राय: स्वर्ण, मुक्ता, मणि, रत्न आदि से बनते थे जिन्हें संभवत: कुछ ही धनी लोग अपना पाते होंगे। सौंदर्य की दृष्टि से फूलों के बने हारों का वैदिक काल से ही महत्त्व रहा है। वैदिक साहित्य में स्रक का प्राय: उल्लेख मिलता है :-

''ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानव: स्रक्षु रुक्मेणु खादिषु श्राया रथेषु धन्वसु। 4''[2]

स्रक की रचना फूलों से होती थी। अश्विनद्वय कमल के फूल की मालाएं धारण करते थे :-

हिरण्ययी अरणीयं निर्गन्धतो अश्विना।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सुतते।''3
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा।''3[3]

महाभारत में भी स्त्रियों के द्वारा पुष्प-माला पहनने का उल्लेख है। वन में रहते हुए सीता कमल की शुभा माला पहनती थी :-

''कमलानां शुभां मालां पद्मिनी व हि बिभ्रती।
ह्री, श्री: कीर्ति: शुभा लक्ष्मीरप्सरा वा शुभानने।''16[4]

वसन्त में स्त्रियों के हार मनोहर फूलों के बनते थे :-

''ईषत् तुषारै: कृत शीत हर्म्य: सुवासितं चारुशिरश्च चम्पकै:।
कुर्वन्ति नार्योऽपि वसन्तकाले स्तनं सहारं कुसुमैर्म नोहरै:।''3[5]

इस ऋतु में महुये के फूल की सुगन्धित माला भी पहनने का प्रचलन था। तपस्वियों के लिए कमल के बीज की माला ही पर्याप्त थी। दीन-हीन लोग गुंजाफल का हार पहनते थे :-

---

1. *कर्पूरमञ्जरी, अंक-2, श्लोक-17।*
2. *ऋग्वेद, मण्डल-5, सूक्त-25, मन्त्र-3.*
3. *,, ,, -10, ,, - 184, मन्त्र-3, अथर्व० 5-25-3.*
4. *रामायण, अरण्यकाण्ड, श्लोक-16.*
5. *ऋतु संहार, सर्ग-6, श्लोक-3.*

अथोपन्निये गिरिशाय गौरी तपस्विने ताम्ररुचा करेण।
विशोषिता भानुमतो मयूखैर्मन्दा किनी पुष्कर बीज मा लाम्।65[1]

हर्ष सित कुसुम की जो मुण्डमाला धारण करता था, वह चन्द्र कला के समान थी। उससे हर्ष के परमेश्वर पद की अभिव्यक्ति होती थी।

बाहु के आभूषण :

वैदिक युग में स्त्री-पुरुष दोनों ही खादि नामक कंकण पहनते थे :-

सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीता सो दुवसो ना सते ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे।3[2]

स्वर्ण के बने खादि का उल्लेख परवर्ती साहित्य में मिलता है:-

''शुभ्रा हिरण्य खादय:''।[3]

रामायण और महाभारत में बाहों में अलंकार, अंगद, केयूर और वलय के पहनने का उल्लेख है:-

''जातरूपमयै र्मुख्यै रङ्गदै: कुण्डलै: शुभै: सहेम सूत्रैर्मणिभि: कैयूरैर्वलयै रपि। 5।[4]

उस समय अंगुलियों में अंगूठियां भी पहनी जाती थीं :-

''वानरलोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमत:।
रामानामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्।2[5]

परवर्ती युग में आभूषण की दृष्टि से बांह के विभाग किये गये - बाहुमूल, बाहुनाली, मणिबन्ध एवं अंगुली। बाहुमूल में केयूर और अंगद, बाहुनाली में वर्जुर या खर्जुर और स्वेच्छितीक, कुटक, कलशाखा, हस्तपत्र, सुपूरक, मणिबन्ध में रुचक और उच्चितक तथा अंगुलियों में मुद्रा एवं अंगुलीय धारण किये जाते थे:-

''वेलिका ङ्गुलि मुद्रा व स्याद ङ्गुलि विभूषणम्।''17
हस्तली वलयं चैव बहुनाली विभूषणम्।
रूचक श्चूलिका कार्या मणिबन्ध विभृषणम्। (8)
केयूरे अङ्गदे चैव कूर्परो परिभूषणे।19

---

1. *कुमार संभव, सर्ग-3, श्लोक-65.*
2. *ऋग्वेद, 1-168-3.*
3. *सांख्यायन श्रौतसूत्र, 32.5.*
4. *रामायण, किष्किन्धा काण्ड, अध्याय-6, श्लोक-22, अयोध्याकाण्ड, अध्याय- 32, श्लोक -5.*
5. *वही, सुन्दरकाण्ड, अध्याय-36, श्लोक-2.1*

अड्गदं वलयं चैव बाहुमूलविभूषणम्। 33
खर्जूरकं सोच्छितिकं बाहुनाली विभूषणमू॥
कलापी कटकं शङ्खो हस्तपत्रं सपूरकम्। 35
मुद्राङ्गुलीयकं चैव हयङ्गुलीनां विभूषणम्॥36[1]

केयूरों में मणियां जड़ी होती थी :-

तमङ्गदे मन्दरकूटकोटिव्याघट्टनोत्तेजनया मणीनाम्।
बंहीयसा दीप्ति वितानकेन चकासया मास तुरूल्लसन्ती॥6[2]

हाथों में वलय या कटक पहने जाते थे। वलय में लाल रत्न या मणियां जड़ी होती थी:-

''निसर्ग रक्तै र्वलया वनद्धताम्राशमरश्मिच्छुरितैर्नखाग्रैः।
व्यद्योतताद्यापि सुरारिव क्षोविक्षो भजा सृक्स्नपितैरिवासौ॥7[3]

शंखक नामक वलयं विशृंखल हो सकते थे। हाथ के चंचल होने पर वलयों से स्वन (ध्वनि) उत्पन्न होती थी :-

''मुदितमधुभुजो भुजेन शाखाश्चलित निश्रृंङ्खलशङ्खकधुव्याः।
तरुरति शयितापराङ्गनयाः शिरसि मुदेव मुमोचपुष्पवर्षम॥30''
व्रततिविततिभिस्तिरोहितायां प्रतियुवतौ वदनं प्रिय, प्रियायाः।
यदधयद धराव लोप नृत्यकार वलय स्वनितेन तद्विवव्रे॥45''[4]

वलय बहुत ढीला ही पहना जाता ता। वह कभी-कभी स्त्रियों के हाथ से गिर भी जाता था:-

''सिञ्चन्त्याः कथमपि बाहुमुन्नमय्य प्रेयांस मनसिजदुःख
दुर्बलायाः। सौवर्ण वलयमवागलत्क राग्राल्लावण्यश्रिय इव शेषमङ्गनायाः॥34''[5]

वलयावलि प्रकोष्ट प्रदेश पर धारण की जाती थी:-

तद्व्रण किं न शोभते विपरीत मदन तूणीरम्।[6]16

पुरुषों के वलय अनेक प्रकार के रत्न, मणि और स्वर्ण से बनते थे। इसका सौन्दर्य अतिशय मनोरम होता था। सोने के अतिरिक्त पदमनाल के वलय भी होते थे :

---

1. *नाट्यशास्त्र, अध्याय-21, श्लोक-17 से 36.*
2. *शिशुपाल वध, सर्ग-3, श्लोक -6.*
3. *वही, सर्ग-3, श्लोक-6.1*
4. *शिशुपालवध, सर्ग-7, श्लोक-30-45।*
5. *,, सर्ग-8, श्लोक-35।*
6. *कर्पूरमञ्जरी, अंक-2, श्लोक-16।*

''उद्वोदुं कनक विभूषणान्य शक्तः सध्रीचा वलयित पद्मनाल सूत्रः।
आरुठ प्रतिवनिता कटाक्षभारः साधीयो गुरुरभ वद भुजस्तरुण्याः।[1]''

हाथ में लीला-कमल धारण करने की रीति थी:-

''हस्ते लीलाकमल मलके बालकुन्दानुवि
नीता लोध्रप्रसव रजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूड़ापाशेनवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीप बधूनाम्।2[2]

सिन्धु सभ्यता के युग में बाहुओं में सोने, चांदी, तांबा, पीतल, घोंघों और मिट्टी के बने हुए कंकण, कटक और चूड़िया पहनी जाती थीं। सोने और चांदी के कंकड़ भीतर से खोखले होते थे और उनमें कोई हल्की वस्तु भर दी जाती थी। मिट्टी के कंकण साधारण कोटि के होते थे। बाहों में भुजबन्ध और अंगुलियों में अंगूठियां पहनी जाती थीं। अंगूठी बनाने के लिए तारों को गोल कर लिया जाता था। एक ही तार के क्रमशः कई घेरे भी कर लिये जाते थे। कुछ अंगूठियों में ऐसे सात घेरे तक मिले हैं।

छाता :- धूप से रक्षा करने के लिए छाता रखने के अतिरिक्त शरीर का सौन्दर्य बढ़ाने में भी छाता साधन माना गया है। पुरुषों एवं स्त्रियों के हाथ में छाता लेने का प्रचलन सदा रहा है :-

''स्वं रागादुपरि वितन्वतोत्तरीयं कान्तेन प्रतिपदवारितातपयः।
सच्छत्रादपरविलासिनी समूहाच्छायासीदधि कतरा तदापरस्याः।[3]

साधारण लोग पत्तों के छाते से ही काम चला लिया करते थे। सभ्य पुरूष के लिये हाथ में छाता और छडी रखना आवश्यक गुण माना गया :- ''छत्री दण्डी मौली सोपानत्को युग मात्र दृग्वि चरेत्''[4] आश्यिन ने लिखा है कि सभी प्रतिष्ठित नागरिक धूप से बचाने के लिये छाता लगाते हैं।

समाज के विभिन्न वर्गों के लिए विभिन्न प्रकार के छाते होना स्वाभाविक है। राजाओं का छत्र हंस, मुर्गा, मोर, सारस आदि के पंखों का बनता था तथा सब ओर से शुक्ल नये दुकूल से आच्छादित होता था। इसमें यत्र-तत्र मोती टंके होते थे तथा मोती की मालायें किनारे से लटकती थीं। छत्र का मूल भाग स्फटिक मणि का बना होता था। छाते का दण्ड एक बेंत का बना होता था। इसमें नव पर्व होते थे और दण्ड स्वर्णपत्र से आच्छादित होता था। छाते का विस्तार दण्ड का आधा होता था। इसकी बनावट मनोरम होती थी एवं उच्च कोटि के रत्न इसमें जडे होते थे। छाते में भी पुष्प-मालायें लटकाई जाती थीं।2[5]

---

1. *शिशुपालवध, सर्ग-8, श्लोक-44।*
2. *मेघदूत, उत्तरभाग, श्लोक-2.1*
3. *शिशुपालवध, सर्ग-8, श्लोक-5।*
4. *चरकसूत्र स्थान, 8.9।*
5. *कल्पसूत्र में जिनचरित से।*

युवराज, राजपत्नी, सेनापति और दण्डनायक के छाते ऊपर जैसे ही बनते थे, पर छोटे होते थे। राज्य के अन्य पदाधिकारियों के छाते मोर के पंखे के बनते थे। इसमें भी रत्न की मालाएं लटकती थीं। इसका सिरा प्रसाद-पट्ट से आवृत्त होता था:-

''जये धरित्र्या: पुरमेव: सारं पुरे गृंह सझनि चैकदेश:।
तत्रापि शय्या शयने वरा स्त्री रत्नोज्जवला राज्य सुखस्य सार:।1
रत्नानि विभूषयन्ति योषा भूष्यन्ते वनिता न रत्नकान्त्या।
चेतो वनिता हरन्त्यरत्नां नो रत्नानि विनाङ्गना ङ्गसङ्गम्।2
आकारं विनिगूहतां रिपुबलं जेतुं समुत्तिष्ठता
तन्त्रं चिन्तयतां कृताकुशत व्यापाश्शाखाकुलम्।
मन्त्रि प्रोक्त निषेविणां क्षितिभुजा माशङ्किनां सर्वतो
दु:खाम्भो निधिवर्तिनां सुखलव: कान्तासमालिङ्गनम्।3[1]

छाता केवल धूप से ही नहीं वरण शीत और वर्षा से भी रक्षा करता था। अन्य लोगों के छाते चौकोर होते थे। ब्रह्मणों के छाते वृत्ताकार होते थे। इसके दण्ड समवृत्त होते ते।[2]

कमर के आभूषण :

सन्धु सभ्यता के युग से ही कमर के लिये 'करघनी' नामक आभूषण मिलता है। उस समय की करघनी में रत्न गूंथे हुए मिलते हैं। तभी से विविध प्रकार की करघनियों का प्राया: सदा ही प्रचलन रहा है। रामायण कालीन कांची कटि-प्रदेश से बहुत नीचे तक लटकती रहती थी:-

''सा प्रस्खलन्ती मदविह्वलाक्षी प्रलम्ब काञ्ची गुण हेम सूत्रा।[3]
सुलक्षणा लक्ष्मण संनिधानं जगाम तारा नमिताङ्ग यष्टि।।38

कांची से रुनझुन की ध्वनि शरीर की गति के साथ ही होती थी। इसमें किंकड़ियां लगी होती थीं :-

''कूजितं नूपुराणां च काञ्चीनां निनदं तथा।
सनिशम्य तत: श्रीमान् सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत्।।25[4]

''असित नयन लक्ष्मीं लक्षयित्वोत्पलेषु
क्वणित कनक काञ्ची मत हंस स्वनेषु।
भधररुचिरशोभां बन्धुजी वे त्रियाणां
पथिक जन इदानीं रोदिति भ्रान्तचित्त:।26

---

1. *बृहत्संहिता, 73.1-3।*
2. *बृहत्संहिता, 73. 4-5।*
3. *रामायण, किष्किन्धा काण्ड, अध्याय-33, श्लोक 38.1*
4. *,, ,, अध्याय-33, श्लोक - 38.1*

''अवनम्य वक्षसि निमग्नकुचद्वितयेन गाढ़मुपगूढ़वता।
दयितेन तत्क्षणचल द्रशनाकलकिंकिणी रवमुदासिवधुः।74[1]

कांची में मुक्तायें भी पिरोयी रहती थीं। कटि-प्रदेश के अन्य आभरण कुलक, मेखला, रशना और कलाप विविध प्रकार की करधनियां थीं। कांची में केवल एक लड़ी होती थी, मेखला में आठ, रशना में सौलह, और कलाप में पच्चीस लड़ियां होती थीं :-

''मुक्ताजालाढ्यतलकं मेखला काञ्चिकापि वा''।36।
''रशना च कलापश्च भवेच्छोणीवि भूषणम्।''
एकयष्टिर्भवेत्काञ्ची मेखला त्वष्टयष्टिका। 37
''द्विरष्टयष्टी रशना कलापः पञ्चविंशकः।[2]

पुरुष कटिप्रदेश की शोभा बढ़ाने के लिए कटिसूत्रक धारण करते थे। इसका नाम सारसन भी था। सारसन से मोती की माला अंगूठों तक लटकती थी :-

''मुक्तामयं सारसनावलम्बि भाति स्म दामापुरदीनमस्य।
अङ्गुष्ठनिष्ठयूतनिर्वोध्र्वमुच्चैस्त्रिस्त्रोतसः संततधारमम्भः।[3]10''

कटि-प्रदेश के अलंकारों में किंकिड़यों के अतिरिक्त ताराओं के आकार की मणियां पिरोई जाती थीं :-

''किं त्वं कटीतटनिवेशितमुद्वहन्ती तारा विचित्र रुचिरं रशनाकलापम्।
वक्त्रेण निर्मथिचूर्ण मनःशिलेन त्रस्ताद्भुतं नगर दैवतवत्प्रयासि।27[4]

गुप्तकाल में स्त्रियों के कटि-प्रदेश के अलंकारों के नाम मेखला, हेममेखला, कांची, रशना, कलाप, कनक, कांची, मणिमेखला, हेमरशना आदि मिलते हैं :-

''नितम्बबिम्बैः सदुकूलमेखलैः स्तनै सहारा भरणैः सचन्दनैः।
शिरोरुहैः स्नानकषाय वासितैः स्त्रियो निदाधं शमयन्ति कामिनाम''4
''पयोधराश्चन्दनं पङ्कचर्चिता स्तुषार गौरार्पित हार शेखरा।
नितम्बदेशाश्च सहेममेखलाः प्रकुर्वते कस्य मनो न सोत्सुकमं।6
''तडिल्लताशक्तधनुर्विभूषिताः पयोधरास्तोय भरा वलम्बिनः।
स्त्रिपश्च काञ्ची मणि कुण्डलोज्ज्वला हरन्ति चेतो युगपत् प्रवासिनामै।20
''चञ्चनमनोज्ञशफरी रसना कलायाः पर्यन्त संस्थित सिताण्डजपक्तिं हाराः।''

---

1. *ऋतुसंहार, 3-26, शिशु० -9-74।*
2. *नाट्यशास्त्र, अध्याय-21, श्लोक-36-37।*
3. *शिशुपालवध, सर्ग-3, श्लोक-101.*
4. *मृच्छकटिक, 1-27.*

नद्योविशालपुलिनान्तनितम्बबिम्बा मन्दं प्रयान्ति समदा: प्रमदा इवाद्य ।3
''वापिजलानां मणिमेखलानां शशाङ्कभासा प्रमदाजनानाम्।
चूतद्रुगाणां कुसुमन्वितानां ददाति सौभाग्यमयं वसन्त:। 4''
''आलम्बि हेम रसना: स्तन सक्त हारा: कन्दर्प दर्प शिथिलीकृतगात्र
य्य:। मासे मघौ मधुर कोकिल भृङ्गनादैर्नार्यो हरन्ति हृदय प्रसभं नराणाम् ।26[1]

प्राय: ये नाम ही या इनके पर्याय परवर्ती युग में करधनी के लिए मिलते हैं।

''कदली प्रकाण्ड रुचिरोरुतरौ जघनस्थली परिसरे महति।
रशना कलापकगुणेन वधूर्म करध्तजद्विरद माकलयत ।45
''आबद्ध प्रचुर परार्ध्य किंकिणीको रामाणाम न वरतोदगाह भाजाम्।
नारावं व्यतनुतं मेखला कलाप: कस्मिन्वा सजल गुणै गिरां पटुत्वम् ।43
''वदन सौरभ लोग परिश्रमद्भरसंभ्रमसंभृतशोभया।
वलितया विदधे कलमेखलाकलकलोऽलक लोल दृशान्यया ।14
''मुहुर सुसममाध्रती नितान्तं प्रणदितकाञ्ची नितम्ब मण्डलेन।
विषमित पृथुहारयष्टि तिर्यक्कुच मितरं तदुर: स्थले निपीडय ।17[2]

करघनी पुष्प की भी बनती थी। कालिदास ने केसर के पुष्प की दाग-कांची का उल्लेख किया है :

''स्त्रस्तां निम्बाद वलम्बमाना पुन: पुन: केसर दाम काञ्ची।
न्यासी कृतां स्थानविदा स्मरेण मौर्वी द्रितीयामिवकार्मुकस्य ।55[3]

पाद आभूषण :

सिन्धु सभ्यता के युग से ही पैरों में आभूषण धारण करने की रीति रही है। उस समय पैरों में पायजेब और झेवर से मिलते-जुलते आभूषण पहने जाते थे। कुछ लोग तो नीचे से लेकर घुटने तक आभूषण पहनते थे। नूपुर भी पहने जाते थे। वैदिक काल में पैर में खादिनामक आभूषण पहना जाता था:- ''अंसेषु व ऋष्टय: पत्सुखादयो वक्ष: सु रूक्मा मरुतो रथे शुभ:। अग्नि भ्राजसो विद्युतो गभस्त्यो: शिप्रा: शिप्रा: शीर्षसु वितता हिरण्ययी: ।4[4]

रामायण में नूपुर से कूजन होने का उल्लेख है। इस अलंकार का प्रचलन उस समय आर्य और आर्येतर दोनों कर्मों में था:

---

1. *ऋतुसंहार, 1.4; 1.6; 2.20; 3.3.; 6.4; 26; 1.*
2. *शिशुपालवध, सर्ग-3, श्लोक-55.*
3. *कुमार संभव, सर्ग-3, श्लोक-55.*
4. *ऋग्वेद, मण्डल-5, सूक्त-54, मन्त्र-11.*

''कूजितं नू पुराणां च काञ्चीना निनद तथा।
सनिशम्य ततः श्रीमान सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत।25'[1]

परवर्ती युग में नूपुर, किंकिणीक, रत्न जालक, संघोष कटक आदि विविध प्रकार के आभूषण थे, जो गुल्फ के ऊपर पहने जाते थे। गुल्फ के नीचे पैर पर पादपत्र होता था। अंगुलियों में अंगूठियां पहनी जाती थी। अंगूठे में तिलक नाम का आभूषण पहना जाता था:-

नूपुरः किं किणीकाश्च घण्टिका रत्नजाल कम् 139
संघोषे कटके चैव गुल्फो परिवि भूषणम्
जङ्घयौः पादपत्रं स्यादङ् गुलीष्वङ्गु लीयकम्।40
अंङ्गुष्ठतिल काश्चैव पादयोश्च विभूषणम्।
तथा लक्तकरागश्च नाना भक्तिनिवेशितः। 41[2]
अशोकपल्लवच्छायः स्यात् स्वाभाविक एव च।

उपर्युक्त सभी गहनों में रमणीयता की दृष्टि से नूपुर का सर्वाधिक महत्त्व था। नूपुर का उपयोग नृत्य करते समय पैर की नर्तन गति द्वारा अभीष्ट मात्रा में विविध प्रकार के अनुवाद (ध्वनि) निकालने में होता था :-

गुरूतरकलनूपुरा नुनाद सललित नर्तितवा मपाद पद्मा।
इतरदनति लोल मादधानां पदमथ मन्मथ मन्थरं जगाम।18[3]

इसकी मनोरम ध्वनि का विचार करके इसका नाम कलनूपुर रखा गया-''हारैः सचन्दन रसैः स्तन मण्डलानि श्रोणीतटं सुविपुलं रसना कलापेः। पादाम्बुजानि कलनूपुर शेखर रैश्च नार्यः प्रहष्ट मनसोऽद्य विभूषयन्ति। 20[4]

पैर में हंस के समान मनोरम ध्वनि करने वाला आभूषण हंसक या पादकटक होता था:-

''मदन रस महौघ्यपूर्णना भी हृदपरिवाहित रोम राजयस्ताः।
सरित इव सविभ्रम प्रयात प्रणदित हंसक भूषणा विरेजुः।'23[5]

हर्ष के समय में सामन्त पादबन्ध धारण करते थे। इस आभूषण में रत्न जड़े होते थे।[6]

जूता : पैर की सुरक्षा एवं शोभा के लिये जूते पहनने का प्रचलन वैदिक काल से लेकर सदा ही रहा है :-''कर्षत्य (३) ष्टाक्षरा गायत्री गायत्रोऽग्निर्या वाने वाग्नि स्त्स्य शुच ँ शमयति पावक

---

1. *रामायण, किष्किधा-काण्ड, अध्याय-33 एवं 6, श्लोक-25 एवं 22।*
2. *नाट्यशास्त्र, अध्याय-21, श्लोक-39 से 41।*
3. *शिशुपालवध, सर्ग-7, श्लोक-18।*
4. *ऋतुसंहार, सर्ग-3, श्लोक-20।*
5. *शिशुपालवध, सर्ग-7, श्लोक-23।*
6. *हर्षचरित से*

बतीभिरत्र वै पावकोऽन्नेनैवास्य शुच ँ शमयति मृत्युर्वा एष यदग्नि ब्रह्मण एतद्रुपं यत् कृष्णाजिनं कार्ष्णी उपानहावुप मुञ्चते ब्रह्मणैव मृत्यो रन्तर्धत्ते ऽन्तर्मुत्यो धत्तेऽन्तर त्राद्या दित्या हुरन्या मुप मुञ्चतेऽन्यां नान्त (प) रेव मृत्योर्धत्ते...

'प्रजापति रग्निम चि नुत स क्षुरप विर्भूत्वाऽतिष्ठत् तं देवा बिम्यतो नो पा ऽऽयन् ते छन्दोभि रात्मानं छाद यित्वोपा ऽऽयन् तच्छन्दसां छन्दस्त्वं ब्रह्म वै छन्दा ँ सि ब्रह्मण एतद्रूपं यत् कृष्णाजिनं कार्ष्णी उपान हावुप मुञ्चते छन्दोभिरेवाऽऽत्मानं छादयित्वाऽग्नि मुप चरत्यात्मनोऽहिं ँ सायै देवनिधिर्वा एष नि धीयते यदग्नि रन्ये.........'[1]

परवर्ती युग में मजबूती और सुन्दता की दृष्टि से कई प्रकार के जूते बनने लगे। लाल, पीले, नीले, भूरे, काले आदि रंग-बिरंगे जूते होते थे। कुछ जूतों के केवल किनारे ही लाल-पीले होते थे। जूते के बनाने में सिंह, चीते, व्याघ्र, हरिण उदविलाव, बिल्ली, गिलहरी और उल्लू के चर्म का उपयोग किनारों को सजाने के लिये होता था। जूतों पर सोने, चांदी, मोती, हीरे, लाल आदि विविध धातुओं रत्नों और मणियों से शिल्प का काम होता था। तृण, मूंज, बज, कमल आदि घासों के हिन्ताल के पत्तों के और ऊनी वस्त्रों की पादुकायें बनाई जाती थीं। रामायण के अनुसार राम ने भरत को पादुकाएं दी थीं जो स्वर्ण से भूषित और भली-भांति अलंकृत थीं :-

> अधिरोहार्य पादाश्यां पादुके हेमभूषिते।
> एते हि सर्वलोकस्य योग क्षेमं विद्यास्यत: ।21
> सपादुके ते भरत: प्रतापवान स्वलकृते संपरिगृह्य धर्मवित्।
> प्रदक्षिणं चैव चकार राघव चकार चैवोत्तमनागमूर्धनि ।[2]

स्त्रियां समय-समय पर खड़ाऊं तथा जूते दोनों पहनती थीं। ''लॉईफ इन एनशियेन्ट इण्डिया'' में आरियन लिखते हैं कि भारतीय श्वेत चर्म के जूते पहनते हैं। इनकी सजावट बहुत अधिक होती है। तले रंग-बिरंग के होते हैं और तला बहुत मोटा होता है जिससे पहनने वाला कुछ ऊंचा जँचे। गुप्तकाल में लोग जूते पहन कर बाहर निकलते थे। इस युग में गाय, भैंस, बकरे, भेड़ तथा वन्य पशुओं के चर्म से रंग-बिरंगे जूते बनते थे। तत्कालीन जूतों के नाम सकलकृत्स्न, प्रमाण कृत्स्न, शल्लक, खपुसा, कोशक, जंघ, अर्धजंघ, पुटक वर्ण कृत्स्न आदि हैं।

सकलकृत्स्न एकतला जूता था। प्रमाण कृत्स्न तीन से अधिक तले वाले होते थे। खल्लक जूते आधे या पूरे पैर ढंकने के लिये होते थे। खपुसा जूते से घुटने तक टकता था। वागुर में पैर और अंगुलियां आच्छादित होती थीं। केशक से अंगूठे और अंगुलियों को ठोकर नहीं लग सकती थी। जंघ और अर्ध-जंघ से पूरी या आधी जांघ तक आवरण होता था। पुटक

---

1. *तैत्तिरीय संहिता, 5.4.4.4 एवं 5.6.6-1*
2. *रामायण, अयोध्याकाण्ड, अध्याय-112, श्लोक 21-29.*

से जाड़े की शीत बचाई जाती थी और पैर नहीं फटते थे। खपुसा, ठंडक, विषैले जन्तु और कांटों से बचाता था। कर्णकृत्स्न रसिक लोगों के रंग-बिरंग के जूते थे। बन्धन कृत्स्न तीन या अधिक बंधनों से बांधा जाता था।[1]

इस विवरण से प्रतीत होता है कि विभिन्न प्रयोजनों के लिये विभिन्न प्रकार के जूतों का प्रचलन था। इनमें से कई प्रकार के जूतों की बनावट की कल्पना तत्कालीन, चित्रों, मूर्तियों और मुद्राओं में बने हुये जूते से हो सकती है। भारतीय जलवायु और भूमि की बनावट साधारणत: ऐसी है कि जूते के बिना काम चल सकता है। ह्वेनसांग ने लिखा है कि लोग साधारणत: नंगे पैर चलते हैं, जूते का प्रचलन कम है। सुसंस्कृत नागरिकों की सभ्यता का परिचय उनकी पूरी वेशभूषा से होता है, पर अधिकांश जनता सभ्यता के सभी आडम्बरों को अपनाने में सदा असमर्थ रही है।[2]

सम्पर्क : *संस्कृत विभाग, जम्मू विश्व विद्यालय, जम्मू-180 006*

----

1. *बृहत्कल्य सूत्रभाष्य, 4-3824-3873 तक।*
2. *ह्वेन सांग, वाटर्स भाग-1. पृष्ठ-151 से।*

रतनलाल शान्त : एक बहुमुखी प्रतिभा

□ प्रो० भूषण लाल कौल

आधुनिक कश्मीरी एवं हिन्दी साहित्य के इतिहास में कश्मीर घाटी के भीतर अध्यापकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कश्मीरी साहित्य में सर्वश्री अब्दुल अहुद आज़ाद, मास्टर जिन्द कौल, दीनानाथ कौल 'वादिम', प्रो० श्री कंठ तोषखानी, प्रो० मुट्टी उद्दीन हाजिनी प्रो० पृथ्वीनाथ 'पुष्प', प्रो० रहमान राही, प्रो० गुलाम नबी फ़िराक, प्रो० मरग़ूब बानहाली, प्रो० हरिकृष्ण कौल, अर्जुन देव मजबूर, पृथ्वीनाथ कौल 'साइल', प्यारे हताश आदि तथा हिन्दी साहित्य में सर्वश्री मास्टर ज़िन्द कौल, प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प; प्रो० ओमकार कौल, प्रो० शिबन कृष्ण रैणा, पृथ्वीनाथ 'मधुप' अर्जुन देव मजबूर आदि प्रबुद्ध अध्यापकों में शिक्षण कार्य के साथ-साथ सर्जनात्मक साहित्य के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही है। सर्जन के स्तर पर कई अध्यापक बन्धुओं ने दोनों भाषाओं के साहित्य में मौलिक प्रयोग किये हैं। इन्हीं में प्रोफ़ेसर (डॉ०) रतनलाल शान्त एक हैं।

शान्त जी पिछले चालीस वर्षों से सर्जन के क्षेत्र में सक्रिय हैं और समसामयिक युग में आज के जागरूक पाठक को अपनी बहुमुखी प्रतिभा से निरन्तर प्रभावित एवं प्रेरित कर रहे हैं। 'शान्त' जी का जन्म 14 मई सन् 1938 ई० को श्रीनगर में हुआ। स्नातक स्तर तक शिक्षा श्रीनगर में ग्रहण की, तत्पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के एक मेधावी छात्र के रूप में उन्होंने एम०ए० हिन्दी की परीक्षा पास की। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में ही वे कई महान विद्वानों, लेखकों एवं कवियों के सम्पर्क में आये जिन में सर्वश्री डॉ० राम कुमार वर्मा, डॉ० रघुवंश, डॉ० धमवीर भारती, डॉ० जगदीश गुप्त एवं डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्हीं गुरुजनों के निकट रहकर (शान्त जी को चिन्तन और सर्जन के क्षेत्र में नई दिशा मिली। इसी विश्वविद्यालय में आप ने डी० फिल् (डॉक्टरेट) की उपाधि के लिये शोधकार्य भी सफलतापूर्वक पूरा किया।

'शान्त' जी का व्यक्तित्व बहुमुखी है। आज के एक कुशल शोधकर्ता, सशक्त गद्य लेखक, अनुभवी सम्पादक, समर्थ अनुवादक, चर्चित अध्यापक, लोकप्रिय कहानीकार और सब से बढ़ कर हिन्दी के जाने माने कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

शान्त जी दो भाषाओं–कश्मीरी एवं हिन्दी–में एक साथ साहित्य-साधना में लीन हैं। हिन्दी में गद्य एवं पद्य अभिव्यक्ति के दोनों साधनों को वे अपना रहे हैं जब कि कश्मीरी में केवल गद्य (कथात्मक एवं आलोचनात्मक) तक ही उनका रचना-संसार सीमित रहा है।

*

कश्मीरी और हिन्दी दोनों भाषाओं में शान्त जी ने विविध विषयों पर एक सौ से भी अधिक निबन्ध रचनाएं लिखी हैं। शोध-पत्रों की संख्या सौ के आसपास है। ये रचनाएं देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही हैं जिनमें 'भाषा' (दिल्ली) 'शीराज़ा' (हिन्दी और कश्मीरी), 'कोशुर समाचार' (दिल्ली), 'वितस्ता' क्षीरभवानी टाइम्स (जम्मू) आदि उल्लेखनीय हैं। शान्त जी के चर्चित निबन्धों में 'कश्मीर की लोक संस्कृति', 'व्यक्तित्व की गरिमा और ईलियट', 'अस्तित्ववाद का कुहासा', 'कश्मीरी रंगमंच और नाटक', 'समकालीन हिन्दी कविता में वाम चेतना' 'कवि व्यक्तित्व : अभिव्यक्ति की समस्या', 'जम्मू कश्मीर में हिन्दी गद्य', 'कश्मीर का निवसिन साहित्य' तथा कई अन्य रचनाएं कथ्य और शैली की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हैं। न केवल सामयिक सन्दर्भो को समझने में अपितु अपनी सांस्कृतिक पहचान की तलाश में भी ये रचनाएं पर्याप्त सहायक सिद्ध होती हैं। अभिव्यक्ति की दृष्टि से इन का शोख आंचलिक रंग तथा नपे तुले शब्दों का व्यवहार निस्सन्देह लेखक की रचना क्षमता को रेखांकित करता है।

*

कश्मीरी कहानी को एक सशक्त साहित्य-विधा का रूप प्रदान कराने में सर्वश्री अख़्तर मही-उ-द्दीन, अली मुहम्मद लोन, हृदय कौल भारती, अवतार कृष्ण 'रहुबर', बंसी निर्दोष, तथा हरिकृष्ण कौल के साथ साथ 'शान्त' जी का योगदान कलात्मक प्रयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। आप की मौलिक कश्मीरी कहानियों का एक संग्रह 'अछरवालन प्यठ कोहु' (पर्वत बरौनियों पर) प्रकाशित हो चुका है। सन् 1967 ई० में 'शान्त' जी की एक कहानी 'छायिगित' (लुका छिपी) 'शीराज़ा' पत्रिका में प्रकाशित हुई। प्रयोगात्मक स्तर पर यह कहानी साठोत्तरी युग के बदलते परिप्रेक्ष्य में अनुभूत सत्य को अभिव्यक्त करने का साहसी प्रयास है। आँचलिकता के आकर्षण एवं लोक जीवन की छटा से शान्त जी की कहानियाँ एक विशेष परिवेष के साथ जुड़ जाती है। 'ठोर', 'रा'व मुति माने', 'त्रिकूंजल' शीर्षक कहानियों को पढ़ कर 'शान्त' जी की रचना क्षमता का सही अनुमान लगाया जा सकता है।

सन् 1997 ई० में शान्त जी की तीन कहानियां फोकदम साहब 'रहमान काकिन बूनि', तथा चन्द्रकलश भारतीय भाषाओं के केन्द्रीय संस्थान, मैसूर से डॉ० ओमकार कौल के सम्पादकत्व में प्रकाशित कश्मीरी कहानी-संग्रह 'गिलिटूरि' में संगृहीत हैं। कहानी पर शान्त जी की एक आलोचनात्मक कृति 'अफ़सानि क्या ग्व' (कहानी क्या है?) भी प्रकाशित हो चुकी है।

*

शान्त जी कश्मीरी भाषा के एक अनुभवी नाटककार भी हैं। इन की कई नाटय रचनाएँ श्रीनगर रेडियो स्टेशन से साभिनय प्रसारित हो चुकी हैं। कश्मीरी भाषा में 'यलिपनरोव' (जब धागा खो गया) शान्त जी की बहुत चर्चित नाट्य रचना रही है। यहाँ इस बात को स्पष्ट करना आवश्यक है कि शान्त जी को रंगमंच के साथ ज़बरदस्त लगाव रहा है। स्वयं उन्हें अभिनय में विशेष रुचि है और नाटय मंचन तथा मंच शिल्प की सम्यक जानकारी है। समकालीन हिन्दी नाटक

की दशा और दुर्दशा से शान्त जी वाक़िफ़ हैं। इलक्ट्रानिक माध्यम के अभूतपूर्व फैलाव से आज रंगमंच/लोक नाटक/नुक्कड़नाटक/व्यंग्यनाटक/तमाशा आदि नाना नाट्य विधाओं की क्या उपयोगिता अथवा प्रासंगिकता रही है–द्रुत गति से बदल रहे परिवेश के प्रति भी शान्त जी सचेत हैं।

*

बहुभाषाविद् शान्त जी एक सफल एवं समर्थ अनुवादक भी हैं। कश्मीर के प्रसिद्ध श्रृंगारिक कवि रसूलमीर (...1889 ई०) की कविताओं का हिन्दी में अनूदित एवं सम्पादित संग्रह 'पोशिमाल' (फूलों की माला) शीर्षक से शान्त जी ने प्रकाशित किया है। ''नुंदऋषि'' शीर्षक से उनकी एक और अनूदित रचनां प्रकाशित हो चुकी है जिस में शेख नूर-उ-द्दीन (1376-1438 ई०) की कश्मीरी कविताओं (श्रुखों) का अनुवाद हिन्दी में किया गया है। रूसी लेखक एंटन चेखॉफ (16/17 जनवरी 1860–2 जुलाई 1904) के नाटक 'तीन बहनें' का कश्मीरी अनुवाद 'त्रे ब्यननी' शीर्षक से शान्त जी के किया और यह रचना भी प्रकाशित हो चुकी है। रेडियो कश्मीर श्रीनगर के लिये शान्त जी ने कई भाषाओं की नाट्य रचनाओं के अनुवाद कश्मीरी और हिन्दी में तैयार किये और इसी प्रकार कई कश्मीरी कविताओं के हिन्दी अनुवाद ने केवल आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित हो चुके हैं अपितु विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हो चुके हैं।

*

एक सकल अनुभवी सम्पादक की भूमिका को भी शान्त जी ने निबाहया है और आज भी निबाह रहे हैं।

अ– पुस्तक-सम्पादक के रूप में शान्त जी की कश्मीरी रचना 'नचरिच किताब' (गद्य पुस्तक) उल्लेखनीय है जो स्नातकोत्तर कश्मीरी-विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय से सन् 1981 ई० में प्रकाशित हो चुकी है। इस पुस्तक में कई प्रसिद्ध कश्मीरी गद्य लेखकों की रचनाएं संगृहीत हैं। 41 पृष्ठों की विस्तृत भूमिका में शान्त जी ने कश्मीरी गद्य की विकास यात्रा पर अपने संतुलित विचार व्यक्त किये हैं। कश्मीरी गद्य के संक्षिप्त इतिहास की सम्यक् जानकारी के लिये शान्त जी द्वारा लिखित यह अग्रलेख पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है।

आ– कोश सम्पादक के रूप में 'त्रिभाषा कोश' को तैयार करने में अन्य सम्पादकों के साथ शान्त जी ने 'हिन्दी-कश्मीरी-अंग्रेज़ी कोश' (तीन खण्ड) के निर्माण में अपना भरपूर योगदान दिया है।

इ– पत्रिका सम्पादक के रूप में शान्त जी आजकल कश्मीरी पण्डित सभा, अम्बफला जम्मू से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'क्षीर भवानी टाइम्स' का सम्पादन पर्याप्त सम्पादकीय सूझ बूझ के साथ कर रहे हैं। पत्रिका का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में शारदापीठ की सांस्कृतिक साहित्यिक उपलब्धियों की पुनर व्याख्या करते हुए युगीन रचनाकार बी सर्जनात्मक क्षमताओं से जनमानस को अवगत कराना है।

*

साठोत्तरी हिन्दी कविता के विकास में अहिन्दी प्रदेशों के हिन्दी कवियों का योगदान भी प्रशंसनीय रहा है। इस कविता को जनमानस के साथ जोड़ने में, इसे लोकरंग अथवा आंचलिक तत्त्वों से गरिमामय बनाने में तथा सांस्कृतिक और ऐतिहासिक। अर्द्ध ऐतिहासिक कथा तत्त्वों को युगीन सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में नये अर्थ-बोध के साथ प्रस्तुत करने में अहिन्दी भाषा-भाषी कवियों की अपनी विशेष भूमिका रही है। शान्त जी साठोत्तरी हिन्दी कविता के एक जाने माने कवि हैं। इन का पहला हिन्दी कविताओं का संग्रह 'खोटी किरणें' शीर्षक से सन् 1965 ई० में 'नीहार प्रकाशन' श्रीनगर-कश्मीर से प्रकाशित हुआ। इस में कुल चालीस कविताएं संगृहीत हैं। अन्त में चार पृष्ठों का कवि द्वारा दिया गया वक्तव्य 'सप्तकीय-परम्परा' की स्मृति दिलाता है। कई दशाब्दियों की निरन्तर साधना के बाद आज उनका सर्जनहार कवि विकास के विभिन्न मंज़िलों की सूचना देता हुआ 'कविता अभी भी' काव्य संकलन में निखर उठा है। शान्त जी का यह काव्य संकलन सन् 1997 ई० में 'नीहार' प्रकाशन सुभाष नगर जम्मू से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में पिछले तीन दशकों के कटु-मधुर अनुभवों से जुड़ी शान्त जी की 96 कविताएं संगृहीत हैं जिनमें 18 कविताएं विस्थापन की पीड़ा को मुखर कर रही हैं। सन् 1996 ई० में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत शान्त जी का मानना है कि-'कविता अभी भी मेरा अंतस से संवाद का मुख्य माध्यम है। बिना किसी सम्भ्रम के। काव्य संग्रह 'कविता अभी भी' में प्रत्येक रचना के साथ लेखन तिथि दी गई है। रचना का मूल्यांकन करते समय तथा लेखक की सामूहिक रचना प्रक्रिया को समझने में इन तिथियों का पर्याप्त महत्त्व है।

प्रस्तुत लेख में मैं केवल उनकी कविताओं के सन्दर्भ में निम्नलिखित पांच बिन्दुओं की ओर विज्ञ पाठक का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ :-

(I) शान्त अपने समकालीन सन्दर्भों के साथ दृढ़ रूप में जुड़े हुए हैं। वे जो कुछ लिखते हैं, अपने अनुभव के आधार पर लिखते हैं और उस तमाम लेखन के लिये अपने आप को ज़िम्मेदार मानते हैं। समग्र रूप से यह दायित्व बोध उनकी कविताओं का एक आकर्षण है। उन्हीं के शब्दों में- 'हमें शब्द को बचाना होगा, फिसलन से अर्थ के तमाम दाय और दायित्व के साथ।' ('कविता अभी भी'-भूमिका)

(II) शान्त जी अपने सांस्कृतिक विरसे के साथ गहन रूप से जुड़े हुए दिखाई देते हैं। उनकी सांस्कृतिक पहचान शब्दों को अर्थ-गर्भित करने में सहायक सिद्ध हुई है। परम्परागत प्रसंगों को समकालीन सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने में उन्हें विशेष रुचि रही है। लिखते हैं :-

ऐसा है बंधु, कि मेरे पैर वितस्ता की कीच ने
पकड़ रखे हैं
और हड़बड़ाहट में
मैं उन्हें पीछे छोड़ आया हूं
मेरा माथा अभी भी

यहां के ताप से पिघल नहीं रहा,
यह सदियों से
'महादेव' और 'हरमुख' की मेघ ढकी चोटियों से
ठण्डे धीमे संवाद में
लीन है।'

(कविता अभी भी–पृ० 142–143)

(III) शान्त आज भी कश्मीर की माटी के प्रति समर्पित है। इसे आप स्थानीय रंग कहिये, आँचलिकता कहिये अथवा अपनी मिट्टी की सौन्धी खुशबू कहिये। शान्त की रचनाओं में यह खुशबू कश्मीरी गुलाब की तरह महक रही है। आज घाटी से बहुत दूर रहने की विवशता झेलते हुए 'शान्त' जब यादों की दुनिया में खो जाता है तो मातृभूमि की अश्रुसिक्त स्मृतियाँ रह रह कर उसके मानस पटल पर सौ-सौ बिजलियों की तरह कौंध उठती हैं :-

कैसे उतर सकता है मेरी आंखों से
बसंती रंग
बसंत पर आकर ही रुक गया था
मेरी सदियों का ऋतुचक्र
दो बरस पहले।
इसी दिन
चल पड़ा था मेरा काफ़िला
वतन को विदा कहती भीगी नज़रों से पगडंडी पगडंडी
खेत खेत
घाटी घाटी
पीले फुंदनी वाली सरसों तड़प उठी थी'

'कविता अभी भी'–पृ० 140

परदेस में रहकर भी अपनी सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने की भरसक चेष्टा करते हुए कभी कभी जब मन ही खंडित होने का अनुभव सताने लगता है तो कवि अप्रत्यक्ष रूप से कश्मीर को ही अपनी व्यंग्योक्ति का निशाना बना लेता है :-

'कश्मीर!
घाटी में जी रहे हो क्या?
तुम्हें ख़बर है
कि तुम ख़ुद अपना इतिहास नहीं रहे
तिथियां भी नहीं रहे हो?
जानते हो?
घाटी के बाहर तुम को कैसे जी रहा हूँ
तुम्हारी पोथियों के बिखरे पन्ने कैसे सी रहा हूँ?'

'कविता अभी भी'

(IV) विस्थापन ने शान्त को अशान्त नहीं किया अपितु उन्हें नये रचना सन्दर्भों के साथ जोड़ दिया। विस्थापन काल के कटु अनुभव, असुरक्षित अस्तित्व की पीड़ा, खंडित जीवन मूल्यों को समेटने का संकल्प, शिद्दत का एहसास-ए-ग़म तथा अपने कहलाने वालों का बेगानापन। अजनबीपन शान्त के रचना-कनवास को विस्तृत कर देता है। एक नई भावानुभूति मानस में रेखांकित हो कर काग़ज़ पर मूर्त रूप धारण करती है और कविता कहलाती है। 'प्रमाणपत्र नहीं है मेरे पास' शीर्षक कविता में शान्त जी लिखते हैं :-

'नहीं,
नहीं, वह प्रमाण पत्र नहीं था
जो पलायन की उस रात मुँह ढक कर
मेरा विद्यार्थी मेरे आंगन में फेंक गया था
मुझ से अक्षर-अक्षर सीखे मेरे शिष्य का वह हस्ताक्षरित
अल्टीमेटम था
जिस की रू से
अगली सुबहु उगने वाला सूरज
मेरे रोशनदान पर रखा
टाइम बम था।'

'कविता अभी भी'-पृ० 153-154

विस्थापन की पीड़ा इस कविता में बड़ी शिद्दत के साथ महसूस हो रही है।

'शान्त' भविष्य के प्रति आशावान है। कठिन आत्म-विर्वासन में जीवन जीने की विवशता झेलते हुए वे आने वाले कल के प्रति निराश नहीं है। उन्हें विश्वास है कि 'वंदि चलि, शीन गलि ब्यायि यियी बहार' (शिशिर बीत जायेगा, वर्फ़ पिघल जायेगी और पुन: बसंत खिल उठेगा) स्वयं उन्हीं के शब्दों में :-

-'पर स्थिति सदा ऐसी ही बनी रहे, ऐसा सोचना भी ठीक नहीं। इसे संक्रान्ति काल ही माना जा सकता है।...नई प्रस्तुति में आदमी की पहचान तथा अनिवार्य प्रासंगिकता फिर से स्थापित करेगी कविता।'

'कविता अभी भी' (भूमिका से)

अपने संकल्प से 'शान्त' सर्जनात्मक प्रतिभा को एक नई दिशा प्रदान करने के हेतु कटिबद्ध दिखाई देते हैं। 'पोथियाँ' शीर्षक कविता में उन का यही आशावादी स्वर दिशाओं में गूँजता प्रतीत होता है :-

'कश्मीर
तुम मुझे तार-तार कर सकते हो
पन्ना पन्ना बिखेर सकते हो
पर मैं टुकड़ा-टुकड़ा समेट कर जियूंगा
फिर सम्पूर्ण हो जाऊंगा

और तुम्हें फिर पाऊंगा।
कश्मीर!
तुम तोता-चश्म हो सकते हो
पर सदियों के लिखे अपने ही अक्षरों की मीमांसा
नकार सकते हो?'
मैं तुम्हारी ही पोथियों से
तुम्हें पाने की नई तिथियां
खोज लूँगा।'

'कविता अभी भी'-पृ० 162-163

*

अन्त में शान्त जी के व्यक्तित्व के विषय में निजी अनुभवों के आधार पर विचार व्यक्त करना यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा। शान्त जी अत्यन्त सौम्य, शान्त स्वभाव के दृढ़ संकल्पी स्थिर चित्त एवं संतुलित सोच-विचार के साहित्यकार हैं। एक योग्य शिक्षक के नाते उन्होंने कश्मीर घाटी में ऐतिहासिक भूमिका निबाही है। हिन्दी भाषा/साहित्य के प्रचार/प्रसार में सदा तत्पर रहे। कश्मीर विश्वविद्यालय में कुछ समय के लिये और घाटी के विभिन्न महाविद्यालयों में 37 वर्षों तक वे पढ़ाते रहे और आजकल सेवा निवृत्त होकर स्थायी रूप से साहित्यिक गतिविधियों के साथ जुड़ गये हैं। शान्त जी से मेरा सम्पर्क पिछले 35 वर्षों से रहा है। मैंने उन्हें कभी क्रोध करते हुए अथवा क्रुद्ध या क्षुब्ध मुद्रा में कभी नहीं देखा है। शिष्ट एवं सौम्य प्रकृति के मालिक शान्त जी के साथ हमारी बेशुमार आशायें जुड़ी हैं।

समकालीन कश्मीरी और हिन्दी सर्जनात्मक साहित्य के उज्जवल भविष्य की कामना करते हुए शान्त जी के सक्रिय-सुखद, मंगलमय एवं आनन्ददायक भविष्य के प्रति आशावान/आशावादी रहना ही तो संस्कार-सम्पन्न होने की पहचान है।

संपर्क : *'पर्ण कुटीर', गांव धर्माल बरनाई-मुट्ठी, जम्मू-181 124*

यादों के झरोखे से

दो कवियित्रियां

□ मनसाराम शर्मा चंचल

बात संभवत: 1956-57 की है। कपूरथला (पंजाब) के कम्पनी बाग में एक विशाल कवि सम्मेलन आयोजित किया गया था। मैं भी जालंधर से सम्मेलन में भाग लेने गया था। हमारे अलावा दिल्ली से भी सर्व श्री देवराज 'दिनेश', रामवतार त्यागी, शम्भुनाथ, हरिकृष्ण प्रेमी चिरंजीत आदि कवि भी पधारे थे। दो कवियित्रियां भी थीं, श्रीमती सुदर्शन बाहरी और श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव। नई-नई शादीशुदा थीं और उन के साथ उनके पति भी आए थे : प्रो० बाहरी और प्रो० श्रीवास्तव।

कवि सम्मेलन से पूर्व आयोजकों ने खाने का भी प्रबंध रखा था। खाने के टेबुल पर दोनों कवियित्रियां ठीक अपने अपने पति के सामने की कुर्सियों पर बैठ गईं। हंसी-मज़ाक का सिलसिला चल पड़ा। तभी मैंने पति-पत्नियों के आमने सामने की बात छेड़ दी, ''क्या विचित्र संयोग है कि इन की कुर्सियां एक दूसरे के ऐन सामने आ गई हैं।

तभी दिनेश जी ने चुटकी ली कि अच्छा हुआ, एक दूसरे से बटने का खतरा नहीं रहा। बात अभी तक हंसी-मज़ाक में ही चल रही थी। तभी प्रो० श्री वास्तव बोले, ''यदि बट गई तो घाटे में मैं ही रहूंगा।'' दरअसल शकुन्तला गोरी और सुन्दर नैन-नक्श की मालिक थी और सुदर्शन सांवली, पतली, लम्बी और औसत दर्जे की महिला थी।

प्रो० श्री वास्तव की टिप्पणी से प्रो० बाहरी एक दम उत्तेजित हो उठे और ऊंचे स्वर से बोले, आप क्या समझते हैं। मैं सुदर्शन जी के ऊपर से ऐसी कई सुंदर महिलाओं को वार कर फैंक सकता हूँ। यही नहीं, दोनों प्रोफैसर आपस में बुरी तरह से झगड़ पड़े। बात हाथपाई तक पहुंचती, बीच-बचाव कर के मामला ठण्डा पड़ गया।

कवि सम्मेलन पर भी उस उत्तेजना का असर दिखाई दिया, लेकिन बीच में दिनेश जी से हमने वह विरह-पूर्ण कविता सुनी, जो उन्होंने इसी बाग में बैठ कर अपनी प्रेयसी को सम्बोधित करके लिखी थी। कविता थी :

मैं तेरे पिंजरें का तोता,
तू मेरे पिंजरे की मैना।
यह बात किसी से मत कहना।

हंसी मज़ाक में माहौल कुछ ठण्डा हुआ। रास्ते में श्री दिनेश ने मुझे कहा, ''चंचल, तुम ने क्या बवण्डर खड़ा कर दिया। मैंने कहा कि बटने की बात तो आपने ही कही थी।''

आज इस घटना को हुए बरसों बीच गए हैं, लेकिन जब भी यह घटना दिमाग में आती है, मेरी हंसी नहीं रुकती।

अरुणा वासुदेवा

मैं जम्मू से आर.टी.सी. की ए क्लास में श्रीनगर का सफर कर रहा था। मैं प्राय: सर्विस के सिलसिले में श्रीनगर आता जाता था। दस बारह घंटे का सफर सुंदर दृश्यावलियां से पूर्ण होते हुए भी पहाड़ी सफर था। सड़क के ठीक न होने से यह और भी कठिन हो जाता था। कोई परिचित या भिन्न कभी-कभार ही मिलता, जब कि बातचीत में कट जाए। इसके लिए मैं सिग्रेट का सहारा लेता, जो कि इन बसों में आम था।

इस बार मेरे साथ एक अधेड़ महिला बैठ गई, जोकि सांवली होने के बावजूद काफी स्मार्ट थी। उन दिनों भी उसने बाल कटवाए थे और ज़ीन और आधी बाजू की टी शर्ट पहनी थी। मैं परेशान हो उठा कि अब तो ये दस घंटे बिना सिग्रेट के ही कटेंगे और मैं उसे कुछ कह भी नहीं सकता था।

बस अभी रामनगर का मोड़ काटने के बाद नगरोटा पहुंची ही थी कि उस महिला ने अंग्रेज़ी में मुझसे कहा, ''यदि आप अनुमति दे तो मैं सिग्रेट पी लूं। दरअसल मैं सिग्रेट पीती हूँ।'' मेरा चेहरा खिल उठा। मैंने कहा, ''मैडम, मैं भी सिग्रेट में शौक रखता हूँ।'' और मैंने जेब से सिग्रेट निकाल कर उसे भी पेश कर दिया और यह संयोग की बात थी कि मेरा और उस का ब्राण्ड एक ही था।

हमने यह सारा सफर सिग्रेटों और बातचीत के मध्य किया। उसने बताया कि उस का नाम अरुणा वासुदेवा है और वह दूरदर्शन के लिए वृत्त चित्र बनाती है। इस समय वह प्रसिद्ध चित्रकार सरदार शोभा सिंह पर एक वृत्त चित्र तैयार कर रही है और उनके प्रसिद्ध शाहकार ''सोहनी महीवाल'' को शूट करने श्रीनगर जा रही है। यह चित्र कश्मीर के शाही महल में है। श्रीनगर पहुंच कर वह होटल चली गई और मैं अपने फ्लैट में।

मैं हैरान हुआ, जब वही महिला तीसरे दिन मेरे कार्यालय पहुंच गई और मुझे बताया कि आप के विभाग में वृत्त चित्रों के निर्माण के लिए पांच लाख रुपये रखे गए हैं। यदि आप डायरैक्टर साहब से मुझे मिला दें तो मेरा काम बन सकता है। मैं उसे डायरैक्टर के पास ले गया और उस का परिचय करवाया। वह भी उस की बातचीत और व्यक्तित्व से प्रभावित हुए। उसके लिए चाय मंगवाई गई और फिर असली मुद्दे पर आ गए।

डायरैक्टर साहेब को शक था कि यह बात मैंने उसे बताई थी; लेकिन बातचीत के दौरान अरुणा ने उन्हें सूचना का वास्तविक स्रोत भी बता दिया। डायरैक्टर साहब ने कहा कि बजट तो हमारे पास है, पर इस का फैसला मुख्यमंत्री ही करेंगे और वह संतुष्ट होकर उठ खड़ी हुई। शाम

के चार बजे थे और छुट्टी हो रही थी। इसलिए वह मुझे टैक्सी में बैठा कर अपने साथ होटल ले गई, जहां बातचीत चलती रही और हमने रात का खाना इकट्ठे खाया।

अगले दिन वह सैयद मीरकासिम से भी मिली और आकर बताया कि बातचीत आशाजनक ढंग से आगे बढ़ी है। उसके बाद वे एक दो बार मुझे मिली, लेकिन जाती बार मुझ से भेंट नहीं हो सकी, क्योंकि मैं उस दिन सरकारी काम से बाहर चला गया था। उसका काम बना या नहीं। मुझे अधिक ज्ञात नहीं हो सका।

योहाना पीटर्स

श्रीनगर में बण्ड के किनारे बड़े डाकखाने के पास एक छोटी सी चाय की दुकान थी. जो प्राय: ग्राहकों से अटी रहती, क्योंकि डाकघर के अलावा कुछ बैंक कर्मी भी वहां चाय पीने आ जाते। उस का मालिक गुलाम बड़ा हंसमुख और विनीत था। यही कारण था कि उस की शाप कभी खाली नहीं रहती। मैं प्राय: वहां जाता। एक गुलामा के लिए और दूसरे अच्छी चाय के लिए।

एक दिन मैं वहां बैठा चाय पी रहा था और मेरे सामने की कुर्सी खाली थी। इस के अलावा सारी दुकान ठसाठस भरी थी। तभी एक विदेशी महिला मेरे टेबल के पास खड़ी हो गई और मुझ से बोली, ''श्रीमान् क्षमा करें। यदि आप अनुमति दे तो मैं इस कुर्सी पर बैठ जाऊं।'' मैंने उसका स्वागत किया और बैठने को कहा। वह बैठ गई। मैंने पूछा, चाय पिएंगी। उसने कहा 'हां'।

मैं आगे ही चाय पी रहा था। मैंने दो कप का आर्डर दिया। इस प्रकार मैंने दो कप पी लिए। ''एक कप और लेंगी?'' मैंने पूछा और उसने हां कही। इस प्रकार उस ने चार कप पी लिए और मैंने पांच। मैंने तब उससे पूछा, क्या एक एक कप और नहीं चलेगा। तो उसने ज़ोर का ठहाका लगाया और बोली, हे ईश्वर! आप कितनी चाय पीते हैं। मैं समझती थी कि मैं ही बहुत अधिक चाय पीती हूँ मगर आप ने तो मुझे बहुत पीछे छोड़ दिया।

चाय के पैसे देने के लिए उसने पर्स निकाला तो मैंने उसे मनह कर दिया और इसी झगड़े में मैंने कहा, चलिए, कोई भी पैसे नहीं देगा और मैं भी उसके साथ निकल गया। उसके लाख कहने पर भी गुलामा ने उससे पैसे नहीं लिए।

बातचीत के दौरान उसने बताया कि वह हालैंड के एक डच खानदान से है और उसका नाम योहाना पीटर्स है। वह हर दूसरे वर्ष संसार के एक क्षेत्र में सैर करने निकल जाती है। इस बार का दौरा पाकिस्तान, भारत, बंगला देश और बर्मा का है। इसी बातचीत के दौरान उसने मुझे मेरे वेतन के बारे में पूछा तो मैंने झूठ का आसरा लेना ही उचित समझा मैंने कहा, अढाई हज़ार। हालांकि मेरा कुल वेतन उन दिनों केवल 600 रुपये था।

उसने कहा, इतनी बड़ी पोस्ट पर रहते हुए भी केवल अढ़ाई हज़ार! मैंने कहा, ''हां, हमारे यहां वेतन बहुत कम हैं और खर्च भी। वह कहने लगी, मुझे देखिए, प्राईमरी स्कूल की अध्यापिका हूं और मेरा वेतन आप की करेंसी के मुताबिक 20 हज़ार रुपये है। मैं चुप रहा।

उसने मुझे नगीन चलने का आग्रह किया, जहां वह एक हौस बोट में सहेलियों के साथ ठहरी थी। मैंने असमर्थता दिखाई और दूसरे दिन इसी स्थान पर इसी समय मिलने का वायदा करके उसने मुझ से विदा ली।

दूसरे दिन वह नहीं आई। मैंने समझा, उसने नहीं आना था, नहीं आई। यह आम तौर पर होता ही है।

दो दिन बाद मैं सुबह सैर को निकला था। तभी मैंने दूर से एक विदेशी लड़की को मुझे आवाजें लगाते अपनी ओर भागते देखा। पास आने पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। यह वही डच लड़की थी, युहाना।

वह आते ही मुझ से लिपट गई। हालांकि बस स्टैंड पर सैंकड़ों लोग मौजूद थे। वह बार बार कह रही थी, मुझे माफ कर दो। मैंने पूछा क्या हुआ? उसने कहा, मैं उस दिन जो नहीं आ सकी। कहो, माफ किया। मैंने हां कर दी। उसके बाद बोली, देखिए मेरे पास घड़ी नहीं है। और उस दिन मैं बहुत लेट हो गई और नगीन से लाल चौक आने की भी व्यवस्था नहीं थी। कृपया यह धारणा मत बनाइएगा कि डच लड़कियां झूठी होती हैं। यह देखिए, मेरा लेह का टिकट, मैं इसी गाड़ी से वहां जा रही हूं। रविवार को वापिस आऊंगी और सोमवार को वहीं उसी टी शाप पर उसी समय मिलूंगी। उसने मुझे अपनी दूसरी सहेलियों से भी मिलाया और लेह चलने को भी कहा।

आज इस बात को बरसों बीत चुके हैं, लेकिन उसका यह कथन मुझे आज भी स्मरण है, ''कृपया यह धारणा न बना लीजिएगा कि डच लड़कियां झूठी होती हैं।''

जब मुझे डाकू समझा गया

बात सन् 1948 की है। मैं ''हिंदी मिलाप'' में था और मुझे दिल्ली की बाहरी बस्ती राम पुरा में एक सेठ का क्वार्टर रहने को मिला। क्वार्टर नम्बर था तीन। मैंने उन दिनों नई-नई शादी की थी।

रामपुरा के मीर मुहल्लादार चौधरी हेतराम ने मुझे आगाह किया कि यहां रात को डाकू आते हैं और अपने को पुलिस बता कर दरवाज़े खुलवाते हैं और बाद में लूटमार भी करते हैं और औरतें भी उठा लेते हैं। इसलिए बिना तसल्ली के दरवाज़ा कभी नहीं खोलना।

अभी मुझे वहां आए एक सप्ताह ही हुआ था कि कुछ व्यक्तियों ने दरवाज़ा खटखटाना शुरू कर दिया। समय था रात के 12 बजे और मैं नाइट-डयूटी से उसी समय लौटा था।

मैंने पूछा, ''कौन है?'' बाहर से आवाज़ आई, ''हम पुलिस वाले हैं। दरवाज़ा खोलते हो या दरवाज़ा तोड़ दें।''' मैने कहा कि ''यदि पुलिस वाले हो तो मीर मुहल्लेदार को साथ लाओ।'' तभी हेतराम ने कहा, ''बाबू जी, मैं भी साथ हूँ।''

मैंने दरवाज़ा खोल दिया और मैं देख कर हैरान रह गया कि दर्जनों लोग पुलिस वर्दी में पोजीशनें लिए खड़े थे। हाथ में पिस्तौल थे और उनके पीछे असंख्य कांस्टेबल रायफलें लिए पोजीशनें लिए थे।

मैंने गुस्से में कहा, कि एक शहरी के घर आप इतनी फोर्स लिए रात के 12 बजे धावा बोल रहे हैं। मैं क्या चोर या डाकू हूं?''

तभी एक इंस्पैक्टर बोला, ''क्या तुम्हारे माथे पर लिखा है कि तुम चोर या डाकू नहीं हो?'' ''लेकिन मेरे माथे पर यह भी तो नहीं लिखा है कि मैं चोर या डाकू हूं।''

तभी एक और अधिकारी बोला, ''बातें बहुत बनाते हो?'' मैंने कहा, ''जब आप बेवजह परेशान कर रहे हैं तो मेरे पास चारा ही क्या है? यदि मेरे ऊपर कोई आरोप है और वारंट आप के पास है तो लगाओ हथकड़ी।'' मैंने हाथ उठा दिए।

तब एक डी. एस. पी. आगे बढ़ा और उसने मुझे पूछा, ''तुम्हारा नाम क्या है?'' मैंने बताया। ''कहां के रहने वाले हो?'' मैंने कहा, ''जम्मू का'' काम क्या करते हो? मैंने उत्तर दिया, ''सम्पादक हूं। 'मिलाप' में काम करता हूं। यह फोन नम्बर है। कन्फर्म कर लीजिए।''

अभी बातचीत चल ही रही थी कि पीछे से एक जीप आई और उसमें से एक अधिकारी ने चिल्ला कर कहा, ''बेवकूफो, कहां आ गए?'' मेरे पीछे आओ।, ''सारा पुलिस दल धड़धड़ करता पलट गया। मैंने देखा, दूर दूर तक बीसियों सिपाही पोज़ीशनें लिए बैठे थे। मैं रात भर सो नहीं सका। दिल सारी रात धकधक करता रहा।

सुबह मैंने सारी बात श्री रणवीर (प्रधान-सम्पादक-मिलाप) जी को बताई। उन्होंने डी. आई. जी. को फोन किया कि आप की पुलिस को तो राष्ट्रपति पदक मिलना चाहिए, जो एक चिड़िया जितने हमारे सम्पादक को डाकू बताकर उसे परेशान करते रहे।

डी. आई. जी. ने श्री रणवीर को बताया कि दरअसल पुलिस गल्ती से वहां चली गई। मैं इस बात के लिए क्षमा याचना करता हूँ और सराय रुहेला के एस. एच. ओ को आप के पास भेज रहा हूँ, जो आप के सम्पादक से व्यक्तिगत रूप से क्षमा याचना करे।

बाद में एस. एच. ओ. ने बताया कि दरअसल फिरोज़पुर से भागा हुआ एक खूंखार डाकू एक औरत को भी भगा कर ले आया था और रामपुरा के एक दूसरे सेठ के क्वाटर में रह रहा था। उस पर हज़ारों रुपये का ईनाम था। इसलिए कई पुलिस दल ईनाम के लालच में निकल पड़े। यह पुलिस दल भी उसी चक्कर में आप के सम्पादक के घर पहुंच गया। जब हमे पता चला तो हम भागे भागे आए और उन्हें वहां से हटाया था, लेकिन वह डाकू अपने क्वार्टर से इसी होहल्ले के दौरान भागने मे सफल हो गया। पुलिस जब उसके क्वार्टर में पहुंची तो क्वार्टर खाली था।

सम्पर्क : *वार्ड नं० 9, कठुआ*

- - -

व्यंग्य

हम कोई भागे थोड़े जा रहे हैं!

□ *राजेन्द्र निशेश*

कल वह अचानक दिखाई पड़ गये। किसी ठेले वाले से सब्जी का मोल-भाव कर रहे थे। हमारे यहां सब्जी बेचने वालों का अधिक मूल्य बतलाना और हमारा मोल-भाव करना दोनों अनिवार्य है, क्योंकि बिना किट-किट के जीवन में उल्लास ही कहां! हमारी बुझी हुई आंखों में ऐसे चमक पैदा हो गई, जैसे नेताजी की आंखों में कुर्सी को देखकर चमक पैदा हो जाती है, किसी पियक्कड़ का चेहरा शराब की बोतल को देखकर मस्ताने लगता है। हमने उनकी पीठ पर धीरे से हाथ रखा। वह बेखबर थे, हमें देखकर सकपका गये। उनका चेहरा ऐसे ज़र्द होने लगा जैसे कसाई को देखकर बकरा या चोर के घर में अचानक पुलिस का आगमन कोई दृश्य प्रस्तुत करता है। हम देख रहे थे कि वह सब्जी ही खरीद रहे हैं, फिर भी बातचीत शुरू करने की गज से कहा–

''क्या, सब्जी खरीद रहे हैं?''

''हां भाई, घर-गृहस्थी के लिए यह सब तो करना ही पड़ता है।'' उनकी आवाज़ जैसे किसी दूरी से छन कर आ रही थी।

''सब ठीक से तो है एक अरसे से दिखलाई नहीं दिए।'' मैंने कहा। वास्तव में मुझे उनकी तलाश एक अरसे से रहती रही है।

''कहाँ भाई जी, ज़िन्दगी को धक्का दे रहे हैं। दो कदम आगे चलती है तो चार कदम पीछे को रिवर्सगेयर लगा जाती है।''–उन्होंने दर्द को अपने चेहरे पर अंकित करते हुए कहा। उनकी यह अदा मुझे सदा ही असमंजस में डाल देती है। आज तक जब भी उनसे मिला, उनकी ज़िन्दगी को 'रिवर्स गेयर' में ही पाया।

किसी जमाने में वह हमारे पड़ोसी हुआ करते थे। देखने में मासूम, मिलनसार लेकिन सतर्क। अपनी सतर्कता के किस्से सुनाना उनकी हाबी थी। कभी कहते कि आज एक जेबकतरे ने लोकल बस में उनकी जेब में हाथ डाल दिया था, लेकिन उनकी सतर्कता ने जेबकतरे की दाल नहीं गलने दी। कभी कहते आज ऑफिस में उन्होंने इतने रुपयों का घपला पकड़ा, और अब उनकी प्रमोशन बस हुई के हुई। ऐसे ही रोज-रोज के किस्सों ने हमें उनका कायल बनने को मजबूर कर दिया। एक दिन वह अपने उतरे हुए चेहरे को लिए हुए मेरे घर आये। मैंने पूछा–''कहो, क्या बात है, इतने मुरझाये हुए क्यों हो?''

''एक विपदा आन पड़ी है अचानक और मेरे हाथ-पाँव फूले जा रहे हैं।''
उन्होंने कहा।

''मुझे बतलाइये, मैं क्या मदद कर सकता हूं?''

उन्होंने अपनी व्यथा-गाथा सुना दी, जिसका सारांश यह था कि उन्हें एक हजार रुपये की सख्त जरूरत है।

उनकी सतर्कता पर उन दिनों मैं फिदा सा था; पड़ोसी का धर्म निभाते हुए उन्हें एक हजार रुपया मैंने दे दिया। लेकिन अब सोचता हूँ कि मैंने कोई बहुत बड़ा गुनाह कर लिया था और उसकी सजा वर्षों से भुगत रहा हूँ। हजार रुपये की मुझे चपत लगाने के पश्चात् उनकी मासूमियत फाख्ता हो गई। मिलनसारता ने बेरुखी का रास्ता अख्तियार करते हुए किसी प्रेयसी के विदेश गये प्रेमी की तरह मुझे विरह की अग्नि में झुलसाना शुरू कर दिया। जब मिलते ही नहीं थे तो उनकी सतर्कता के किस्से कैसे मेरे कान सुन पाते। लाचार होकर कुछ दिनों के पश्चात् उनके घर पहुंचा और अपने रुपयों का तकाज़ा किया। उनका नपा-तुला उत्तर था-''हम कोई भागे थोड़े जा रहे हैं।''

हमने लाख समझाया। ईमानदारी परमो-धर्म: याद दिलाया, पाप-बोध का अहसास याद दिलाया। लेकिन वह चिकने घड़े की तरह मेरे शब्दों को फिसलाते गये।

''हम कोई भागे थोड़े जा रहे हैं।'' - सदा ही यही वेद मंत्र उनके श्रीमुख से निकलता। उनका यह ब्रह्म-अस्त्र हमारी छाती भेदने का पुण्य कार्य करता। और एक दिन हमने पाया कि वह इस पड़ोस को छोड़कर किसी दूसरे पड़ोस में जा बसे हैं और जाहिर है वहाँ भी अपनी सतर्कता के किस्से सुनाते रहे होंगे। जाने से पूर्व अपनी सतर्कता के किस्से सुनाते हुए तीन-चार और पड़ोसियों को हजार-हजार, पांच-पाँच सौ की मीठी चपत लगा गये थे। चलो, कोई तो मेरे जैसे दुख का भागी है पड़ोस में, सोचकर कुछ ढांढस सा बंधा। अपनी दीवार के गिरने के साथ-साथ यदि पड़ोसी की दीवार भी गिर जाये तो वह आत्म संतोष का बोध प्रदान करती है। लापता ईमान की तरह हमने उनकी तलाश शुरू कर दी। आखिर एक हजार रुपया का मामला था। लोग तो व्यापार में एक हजार के एक लाख तक बना जाते हैं और एक हम थे जो घर फूंक तमाशा देख रहे थे। एक दिन हमें किसी ने संकेत दिया कि वह फलां जगह अपना मकान बनवा रहे हैं। हमने उन्हें वही धर दबोचा। उन्होंने मासूमियत को अपने चेहरे पर ओढ़ते हुए कहा हम कोई भागे थोड़े जा रहे हैं। अब आप देखिए न, आजकल मकान बनवाना, हिमालय पर्वत पर चढ़ने के समान है। खर्चों का हिसाब लगाते-लगाते सांस फूलने लगती है।''

मैंने कहा-''आपको मेरे रुपयों को कब का लौटा देना चाहिए था। समय पर आपके काम आये, इस एहसान का बदला आप इस प्रकार देंगे, सोचा भी नहीं था।''

उन्होंने फिर रटे-रटाये वाक्य को धकेल दिया-''हम कोई भागे थोड़े जा रहे हैं। थोड़ा मकान से निपट लें, लौटा देंगे।'' हम बोल्ड होकर मुँह लटकाये लौट आये। ऐसे ही काफी समय बीत गया। इस बार पता चला कि उनके सुपुत्र की शादी है। हमने सोचा अब तो एक और एक ग्यारह कमा रहे होंगे, जो बेटे की शादी रचा रहे हैं। किसी तरह धर दबोचा।

उन्होंने मिलते ही कहा-''भाई शादी का निमंत्रण-पत्र देना तो मैं भूल ही गया। बुढ़ापे में याददाश्त भी साथ नहीं देती। आप आइयेगा अवश्य।''

हमने कहा-''वो हमारे हजार रुपये का क्या बना। बनिये की तरह सूद पर दिये होते तो अब तक एक लाख के तकाज़े के हम हकदार होते।''

''अजी देखिए न! यह शादी-विवाह का मामला कोई बच्चों का खेल नहीं है। बिल पर बिल दिल को धड़काते जाते हैं। आप इत्मीनान रखिए, हम कोई भागे थोड़े जा रहे हैं।''-उन्होंने कहा। हम अपने शराफत के कम्बल को ओढ़े हुए लौट आये।

इसी दौरान काफी कुछ बदल चुका है। अगर मेरे बाल खिचड़ी हो चुके हैं तो उनके बाल भी, 'हम किसी से कम नहीं' की भूमिका अदा कर रहे हैं। सरकारें बदल चुकी हैं। हमारी आगामी पीढ़ी की सोच बदल चुकी है। अचानक दो बिछड़े प्रेमियों की तरह उनका और हमारा मिलन हो जायेगा और वह भी सब्जी के एक ठेले पर, ऐसी हमें आशा न थी, क्योंकि उनके घर तक जाकर रुपयों का तकाजा करने की हिम्मत हम कब की खो चुके थे। हमने घुमा-फिरा कर रुपये लौटाने का निवेदन उनके सम्मुख रखा। लेकिन जैसी कि हमें उम्मीद थी। उन्होनें अपना रटा-रटाया संवाद उछाल दिया-''हम कोई भागे थोड़े जा रहे हैं। देखते नहीं, सब्जी के भाव आसमान को छू रहे हैं।''

सम्पर्क : *राजेन्द्र निशेश, 2698, सैक्टर 40 सी०, चण्डीगढ़ 160036*

– – –

कहानी

सिलसिला

□ *केसरा राम*

''कैसे हैं अब तुम्हारे बापू?'' परचून की दुकान पर सत्तु से मुलाकात होने पर भंज्जु ने पूछा।

''कैसे क्या हैं, बस खटिया से चिपके पड़े हैं।'' सत्तु ने अनमना सा हो कर कहा जैसे कि उसे अपने बापू के बच जाने का बहुत अफसोस हो। भज्जु उसे हमदर्दी भरी निगाहों से ताकने लगा।

''लाला, मिर्च, दाल और जरा सा नमक दे दो।'' सत्तु ने दुकानदार की ओर दो रुपए का तुड़ा-मुड़ा हुआ सा नोट बढ़ाते हुए याचना की। दुकानदार ने नाक पर नीचे सरक आए मोटे शीशों वाले चश्मे के उपर से गीद से भरी गोल आंखों से सत्तु के उदास, वीरान से चेहरे पर फोक्स बनाया।

उसके चेहरे पर खुदी दर्द की गहरी खाईयों की विरानियों में कहीं खो जाए, इससे पहले ही कश्मीरी लाल ने हड़बड़ा कर चेहरे से नजरें हटा ली। फिर चश्मे के माध्यम से दो रुपए के नोट को फोक्स में लिया। सत्तु का आगे बढ़ा हुआ हाथ कांपने लगा था। लाला भी तब तक अपने हाथ में थामी गुड़ की भेली को फोड़ चुका था। एक डली तराजू में और बाकी को पास पड़े ढक्कन वाले ज़ंग लगे पीपे में डाल दिया।

''झोली कर...हां...ठीक तरहां पकड़ ले...।'' कश्मीरी लाल ग्राहक को सम्बोधित हुआ। ग्राहक को तो जैसे पहले ही पता था। उसने अपने कमीज के पल्ले को दोनों हाथों से पकड़ कर तैयार रखी हुई झोली तुरंत उसके आगे फैला दी और गुड़ डलवा कर चलता बना।

कौन कहता है कि लोग पोलिथीन के लिफाफों के आदी हो गए हैं...पर्यावरण को खतरा है...लाला कश्मीरी लाल ने तो कभी कोई भी समान किसी को लिफाफे में डाल कर नहीं दिया।

वो तो लोग अपने साथ एल्युमिनियम का मग या कोई खांसी की दवाई वाली शीशी के ढक्कन में छेद करके बत्ती डाल कर बनाई हुई चिमनी साथ ले कर आते हैं वरना उसका बम चले तो वह दो आने का मिट्टी का तेल भी झोली में डाल कर देवे।

''भरा मेंढे जिथां ढिड दी आग बुझावण दे लाले पए होवण उथां पर्यावरण कुं कंई भा नी लगदी...एह पर्यावरण ते एह पलुशन, एह सारे धापे होए लोकां दे चोंचले हेन...।''

''ठीक कहते हो लाला, जो लोग प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करते हैं, अंतत: वे ही पर्यावरण का रोना रोते हैं...।'' उस दिन शराब का ठेकेदार कश्मीरी लाल की बात का समर्थन करते हुए कह रहा था। वह दुकान पर सिगरेट लेने आया था। वह जब भी चैकिंग पर या माल की सप्लाई देने आवे, लाला की दुकान से सिगरेट जरूर लेने आता है। साथ ही कुछ गपशप भी मार जाता है।

''अब इसी बस्ती को लो, यह बस्ती खत्म हो जाएगी, यहां के लोग खत्म हो जाएंगे, पर ये यहां के पर्यावरण को कुछ नहीं करेंगे...पर्यावरण को तो जो कुछ भी करेंगे, ए ब्लाक, बी ब्लाक और साउथ ब्लाक वाले ही करेंगे...।''

''एक बात है जनाब, उन पोल्युशन वालों को यदि किसी दिन पता चल गया तो वे तो 'पर्यावरण मित्र' का खिताब जरुर लाला जी को दे देंगे...।'' ठेकेदार के मुंशी ने ठेकेदार के आगे पूंछ हिलाई थी।

इस बस्ती में यही एकमात्र करियाने की दुकान है। बस्ती वाले यहीं से रोजमर्रा का सब सामान खरीदते हैं। इनकी रोजमर्रा की जरूरतों की फेहरिस्त भी ज्यादा लम्बी नहीं है। नमक, मिर्च, हल्दी, तेल, गुड़ और कोई एकाध दाल वगैरह। और सस्ती सी मीठी गोलियां तथा गचक, बच्चों के लिए।

इस दुकान के अलावा यहां एक देसी शराब का ठेका भी है। सामने खाली पड़ी जमीन पर। लाला कश्मीरी लाल की दुकान से कोई डेढ सौ गज की दूरी पर एक आठ बाई दस के पक्के कमरे में अवस्थित है यह ठेका। इन दोनों ही जगहों पर सारा दिन रौनक रहती है। लोगों का आना जाना लगा रहता है।

लाला शाम को अपनी साईकल पर शहर चला जाता है। चोरी हो जाने के डर से कोई बड़ी आयटम वह दुकान में नहीं छोड़ता। साईकल पर साथ ही ले जाता है और सुबह वापस ले आता है। यही वजह है कि उसकी दुकान में कभी चोरी वगैरह की घटना नहीं हुई।

ठेके पर लोगों का आना जाना देर रात तक लगा रहता है। रात के ग्यारह-बारह बज जाते हैं। और लगभग इसी समय लालटेन का केरोसीन खत्म होते ही ठेके वाला छत पर चढ़ कर सीढ़ी ऊपर खींच कर सो जाता है। यह तो पक्का ही नियम है। उसके बाद दारु नहीं मिलती।

इस बस्ती के लोग दिहाड़ी-धप्पा करके शाम को थके-मांदे सीधे यहीं चले आते हैं। यही कारण है कि उनकी दिन भर की कमाई का आधे से ज्यादा हिस्सा घर पहुंचने से पहले ही खत्म हो जाता है। इस ठेके पर अद्धा, पव्वा नहीं मिलता। अत: लोग यहां ठेकेदार द्वारा रखे प्लास्टिक के मगों में दारु डलवा कर यहीं बैठ कर पी लेते हैं। और ठेकेदार द्वारा मुफ्त उपलब्ध करवाए गए, खिड़की के पास टंगे लिफाफे में से नमक की चुटकी लेकर चाट लेते हैं। इसे वे सफेद मुर्गा कहते हैं।

तत्पश्चात् कुछ चुपचाप, कुछ लुढ़कते हुए तथा कुछ लड़ते झगड़ते हुए अपने घरों को लौट जाते हैं। अपने बीवी-बच्चों के पास, जो इंतजार कर रहे होते हैं कि उनके घर का मालिक, उनके सिर का सांई, उनका बापू आएगा, कुछ लाएगा तो चूल्हा जलेगा...।

कुछ वहीं लुढ़क जाते हैं।

इन लोगों के लिए तो ये दुकान और ठेका ही 'डिपार्टमेंटल स्टोर' है, 'अपना बाजार' है, 'फेयर प्राईस शॉप' है। इन दोनों जगहों पर इसी बस्ती के दो लड़कों को रोजगार भी मिला हुआ है। लाला कश्मीरी लाल के पास लड़का दाल, मिर्च वगैरह में कंकर, पीसी हुई ईट इत्यादि मिलाने के साथ-साथ बस्ती में से छोटी-मोटी उधारी की उगाही करने की भी ड्युटी निभाता है। वैसे जब से भारतीय अर्थव्यवस्था खुलनी शुरू हुई है, तब से लाला ने लोगों को उधार देना कम कर दिया है।

ठेके पर रखे मुण्डु से एक बोतल शराब में कैप्सूल मिला कर चार-चार बोतलें बनाने का काम लिया जाता है। काफी दूर लगी वाटर-वर्क्स की टूंटी से उसे कई बाल्टी पानी रोजाना लाना पड़ता है।

बस्ती के बाकी लड़के इन दोनों को ऐसे देखते हैं जैसे कि गांव वाले अपने ही गांव के किसी तहसीलदार लगे लड़के के गांव लौटने पर उसे देख कर प्रभावित होते हैं। हालांकि इनकी पगार दारु की एक बोतल की कीमत के बराबर भी नहीं है पर बाकी लड़कों में इन्हें देखते ही अपनी बेरोजगारी का अहसास और भी तीव्र हो कर उन्हें अंदर तक कचोटने लगता है। कई तो इनकी जगह लाले की दुकान या ठेके पर स्वयं काम पर जाने की कल्पना करके ठण्डा सांस छोड़ कर रह जाते हैं।

''अरे चीजें तो इतनी गिनवा दी...बोरी-वोरी भी लै के आया है क्या साथ?'' लाला ने बिदकते हुए सत्तु के हाथ से दो का नोट झपट लिया।

यहां का यही उसूल है। पहले पैसे, बाद में सौदा-पत्ता। गाहक आए और कहे कि फलां-फलां सामान तोल दो, पर लाला को भी यकीन आना चाहिए न कि इसके पास पैसे भी हैं। यह यकीन पहले पैसे पेश करने पर ही आ सकता है।

सत्तु से पहले वाले गाहक ने भी तो ऐसा ही किया था, ''लाला एक रुपए की चाय पत्ती, एक रुपए का गुड़, एक रुपए की दाल, आठ आने की मिर्च और आठ आने की मेंहदी और एक रुपया वापस...।'' उसने पांच का नोट बनिए की तरफ बढ़ाते हुए घर से रटवा कर भेजा गया वाक्य दोहरा दिया था।

''हुं! कोई हेक्क रपिया...कोई डु रपै...इहो कम .ह गिया मैंकु तां...।'' लाला बुड़बुड़ाए जा रहा था, ''ओए मैंदी हत्थां नु लाणी ए के सुंघोगे?''

''मेंहदी? क्या इस बस्ती के लोग मेंहदी रचाने का सामर्थ्य भी रखते हैं? फिर लाला तूने कैसा गणित बैठाया है कि लोगों को उधार देना बंद कर दिया है?'' ठेकेदार का यह कथन पता नहीं बस्ती के लोगों पर व्यंग्य था या लाला पर। परन्तु लाला कुछ न बोला।

लाला ने एक जंग लगे लोहे के काले-से डिब्बे की ओर हाथ बढ़ाते हुए चशमे के मोटे शीशों में से सत्तु को एक बार फिर घूरा। सत्तु ने तुरंत अपनी कमीज के पल्ले पकड़ कर झोली फैला ली। वह लाला का व्यंग्यार्थ नहीं समझ पाया था।

वैसे लाला बुरा नहीं है। लाला तो सारी बस्ती वालों का लाला है। बस। सभी को ऐसे ही घूरता है। सभी छोटे-बड़ों को एक-सा सम्मान देता है। कोई भी उसका बुरा नहीं मनाते। बस्ती वालों के छोट-मोटे घरेलू हिसाब-किताब भी वह फ्री में कर देता है। रोजाना महंगाई का रोना रोता रहता है। जैसे कि महंगाई बस्ती वालों ने ही बढ़ाई हो।

''अबे झोली में तु सारी दुकान ले के जाएगा क्या?'' लाला ने तीन छोटी-छोटी पुड़ियां सत्तु की झोली में डालते हुए काले बादल की तरह गर्जना की, ''घिन्न...!'' सत्तु गर्जना से अप्रभावित, तीनों पुड़ियां मुट्ठी में भींचे घर की ओर चल पड़ा।

भज्जु भी चुपचाप उसके साथ हो लिया। चलते-चलते सत्तु ने पीछे मुड़ कर ठेके की ओर देखा और मौन भंग करते हुए बोला, ''एक बात बोलूं?''

''बोल...।''

''बुरा मान जाएगा...।''

''नहीं तो...।''

''इससे तो तेरा बापू ठीक रहा जो मौके पर ही मर गया...।'' कहते हुए सत्तु ने भज्जु की ओर देखा।

''कैसे?''

''और क्या! बेचारा गरीबी में रोज़-रोज के मरने से तो बच गया...उपर से तुझे पच्चीस हजार रुपए मिल गए सो अलग...।''

भज्जु और सत्तु एक दूसरे के हाथ में हाथ डाले चले जा रहे थे।

भज्जु कुछ न बोला।

सत्तु ने कुछ पल के विराम के बाद फिर अपने अंदर का गुब्बार निकाला, ''जीता रहता तो सारी उम्र में दो सौ रुपए जमा न कर पाता...।''

भज्जु ने सत्तु की उंगलियों में फंसी अपनी उंगलियां निकाल लीं।

''ईलाज तो तेरे बापू का भी करवाया है सरकार ने...पांच हजार रुपए जो दिए थे।'' भज्जु ने सत्तु के भाव-शून्य चेहरे की ओर देखते हुए कहा।

''काहे का ईलाज...जितने दिन बापू हस्पताल में था, सो था...जब से पैसे खत्म हुए हैं, हस्पताल से छुट्टी मिली है, न दवाई नसीब हुई, न रोटी...अंधा तो उसी दिन हो गया था, अब हाथों-पांवों की उंगलियां गलने लगी हैं, मुंह से खून भी आने लगा है...।'' सत्तु की आवाज दर्द में डूबी थी। उसका गला भर आया था।

दोनों के बीच खामोशी छा गई। दूर क्षितिज के पास जाकर दोनों का दर्द एकमेक होने के प्रयास में था। भज्जु के पास पैसे थे। पर वह अपने बाप को खो चुका था।

कौन जाने किस का गम बड़ा था।

दोनों कमेटी वालों द्वारा डाली गई गंदगी के ढेर के पास से नाक सिकोड़ते हुए गुजरे। गंदगी के ढेर के पास गंदे नाले के दूसरे किनारे पर दो लड़कियां 'बाहर' बैठ रही थीं। सुअरों के सामने डटी हुई। बचते-बचाते, सुअरों के बीच से निकल कर वे अपनी गली में मुड़ गए।

रोटी बड़ी कि चांद?

पेट की आग बहुत खतरनाक होती है। सत्तु की आंखों में चमक का एक हल्का-सा झपकोला सा पड़ा।

उसके अंत:करण में कोई दुविधा कुलबुला रही थी।

उसने दुखों के पहाड़ को एक तरफ सरकाते हुए भज्जु से पूछा, ''उन पच्चीस हजार रुपयों का क्या करेगा...तेरे बापू के 'क्रिया' पर तो मुश्किल से सौ डेढ़ सौ खर्च हुए होगें?'' पल भर के लिए वह खामोश हो गया। उसकी आंखें की पुतलियां हिलीं, जैसे कि वह मन ही मन नोट गिन रहा हो। फिर उसने खामोशी भंग की, ''मैंने तो कभी इतने रुपए देखे भी नहीं...।'' और भज्जु के मुंह की ओर उत्सुकता दे देखने लगा। जैसे कि वहां नोटों की गड्डियां चिन रखी हों। चेहरे पर फैली हल्की सी चमक का स्थान अब दर्द की गहरी लकीरें ग्रहण करने लगी थीं।

''करना क्या है, जितने दिन चल सका, दो वक्त भर पेट खा सोंएगे, किसी दिन दिल किया तो शहर से अच्छी दारु लाकर पी लेंगे...।'' मोहभंग की स्थिति में बुड़बुड़ाया भज्जु।

सुनते ही सत्तु के चेहरे पर करुण हैरानी के भाव उभरे।

''फिर दारु?''सत्तु के मुंह से अनायास ही निकला।

उसका हैरान होना सही था। क्योंकि देश के अन्य हिस्सों की तरह इस बस्ती में भी जहरीली शराब के कारण कई बार सामूहिक रूप में लोग मारे जा चुके हैं। इस सिलसिले को विराम देने के लिए सरकारी या गैर सरकारी तौर पर कभी कोई प्रयास नहीं किया गया।

हां, हर बार सरकार मरने वालों को पच्चीस-पच्चीस हजार और अंधे या नकारा हो चुके लोगों को पांच-पांच हजार रुपए दे देती है। बस्ती के दो-तिहाई घर तो सरकार की इस स्कीम का फायदा जरुर उठा चुके होंगे अब तक।

''हैरान काहे को होता है? सरकार ने भी तो यही सोच कर दिए होंगे कि चलो मरने वाले तो मर गए जहरीली शराब पी कर, लेकिन उनके पीछे वाले तो कुछ दिन अच्छी शराब पी लेवें...।'' भज्जु ने अपने चेहरे पर स्थाई रूप से खुदी दर्द की गहरी लकीरों पर मुस्कराहट की परत चढ़ाने का असफल प्रयास करते हुए कहा और अपनी कोठड़ी में घुस गया।

सत्तु के अंत:करण में कोई दुविधा अब भी कायम थी।

जिस दिन सत्तु का बापू मरेगा, उस दिन लाला कश्मीरी लाल जरूर हिसाब लगा कर बताएगा कि सत्तु को उसके बापू के गलत समय पर मरने के कारण कितने हजार का नुकसान हुआ है।

सम्पर्क : *द्वारा जी.एम.टी., संगरूर*

लेखकों से

जम्मू, कश्मीर और लद्दाख में कला, संस्कृति और साहित्य के आकलन और उनके विकास को रेखांकित करने वाली सामग्री को शीराज़ा में वरीयता दी जाती है।

—सम्पादक

चिनारों की आग

□ शामा

मैं इक आग का
जमाल संभाले
वापिस लौट आई हूँ
वतन की मिट्टी का
तिलक करके
हवाओं की महक...
अपनी सांसों में
भर लाई हूँ।
समेट कर आंखों में
धुंध, पर्वत और पहाड़.
जी कर
बिछुड़े दोस्त/मित्रों का संग
यादों की तिजोरी भर
परछाई दिन की
रात के आंचल में बांध
अपने वतन से
उजड़ों के लिए
सौगात ले आई हूँ
मंदिरों की दहलीजों पर
माथा टेक...
मस्जिदों की जालियों पर
मौली के धागे बांध
मैंने रूठा पीर

मनाया है।

इन्सानियत का रिशता

इन्सान का इन्सान से

बना रहे

यही संकल्प

नील झील में

बहा कर आई हूँ-

अपने ही देश में

शरणार्थी हो गये हैं हम

सांस सांस घायल

मां की पीड़ा

कतरा-कतरा

कुण्ठित पिता का ख़ून

विधवा की कातर

चीखो पुकार

मासूम बच्चों के

सहमे लहज़े...

अक्षर-अक्षर मैंने

अपने वतन के

पत्थर पानी को

सुनाया है।

हम जलावतनों

जिसका दर्द

छाती पर झेला है

वह शर्म नाक हादसा

हम वतनों ने

अपनी आंखों से

देखा है।

इस हुंकारे का

अहसास तो

सरेआम पढ़ आई हूँ

पर "चलो वापिस

लौट आओ।"

ऐसा बुलावा

सरज़मी की सरहदों से

अभी हमें नहीं आया

सच्चाई की यही अंगार

मन में छुपाये

हाथों में चिनारों की आग

उठा लाई हूं

मुरादें वापिसी की

वहीं, वादी की ठंडी बर्फ में

दफना आई हूँ।

हम जलावतनों की

अब, कभी वापिसी

नहीं होगी।

मैं सारे शक-शुबह

मिटा कर आई हूँ।

मैं इक आग का

जमाल संभाले

वापिस लौट आई हूँ

संपर्क : *बी 133, चिरंजन पार्क, नई दिल्ली-110 019*

दो प्रेम कविताएं

□ सतीश विमल

(1)

तुमने सृजक की दरगाह से
जो बीज लाए थे
उन से जो फ़स्ल आई
उस पर मेरा भी नाम लिखा था
तभी मैंने
तुम्हारी चाहतों का सूत काता
तभी मैंने
तुम्हारी धड़कनों के धागे बुने
फिर जो चादर
मेरे लिए तैयार हुई
वह तुम्हारी देह की थी
मैं तुम्हारा रेशम ओढ़ता हूँ
तो सृजक दी दरगाह को
पास महसूसता हूँ
मेरी देह से चादर छीनकर
सृजक की दरगाह में
पाप को भागीदार न बनो

(2)

आज ने मेरी मुट्ठी में

जितने भी क्षण रखे

वह मेरे अस्तित्व की

परिभाषा करते हुए दुर्बल क्षणों की तरह

कांतिहीन हैं

मैं अपनी बंद मुट्ठी

तुम्हारी देह पर खोलूंगा

आज ने तुम्हारी देह में

जो अगरबत्ती जलाई है

उसकी सुगंध पाकर

मेरे दुर्बल कांतिहीन क्षणों में

जीवन के दीप प्रकाशित होंगे

कल मेरे क्षणों में

तुम्हारी सुगंध होगी

और तुम्हारी देह पर

मेरा खुला हुआ हाथ

संपर्क : *पोस्ट बाक्स नं० : 1089, जी.पी.ओ., श्रीनगर–190 001*

सब कुछ होने के बाद भी

□ डॉ० पद्मा सिंह

दूषित हवा पानी की तरह
प्रदूषित हो रही है ज़मीन
हालांकि
पहले से ज्यादा लहलहाती हैं
फसलें
पैदावार दुगनी और चौगुनी
दाने खूब भरे भरे

सिर्फ गंध और स्वाद ही तो चुराये हैं
रसायनों की नई-नई किस्मों ने

आधी रोटी खाकर
सुबह का रास्ता देखने और
खून का घूंट पीने की बात पर
यकीन नहीं आता
काल्पनिक लगती हैं कहानियाँ
शराफत की
गुड़िया से अब नहीं खेलती लड़की
खिलौने
शक्ल बदल कर शामिल हो गए हैं
युद्ध में
गढ़ रही हैं आस्थाएं
फ्लापी और चिप्स
सुलगते घरों की आंच में
पक रहे हैं बचपन
जब पंख फड़फड़ाती है
कोई फाख़्ता
करना चाहता है गुटर गूं
कोई कबूतर
खोखले कोटरों में कंपकपाते
हथेलियों से मूंद देते हैं
आवाजें
उम्र दराज़ फाख्ताएं
और बूढ़े कबूतर

संपर्क : *शास स्नातकोत्तर नूतन क. महाविद्यालय, (किला मैदान), इंदौर (म.प्र.)*

टूटते सपने

☐ डॉ० शेफालिका वर्मा

सारे शहर में फैली ये कराहती
जिन्दगियाँ-
जैसे
चश्मे के पानी पर उतर आयी हो
बीमार धूप
पीठ के नीचे गुलाब की डाल लिए
नीले आसमान के सपने देखती
जिन्दगियां!!
दम तोड़ती इनके अरमानों की
सांसें
भविष्य की टूटी टांगों को देख रही
जो अब
कभी नहीं आयेगा
कभी नहीं
शायद!
बंद कमरे के श्मशान में जला रही
अपने एकाकीपन की लाश
अपनी ही आत्मा में देख रही
'कल' और 'आज' के सपनों का
द्वन्द्व
एक प्राचीन फासिल की तरह
जो
उपर से सिर्फ पत्थर दिखायी देता है
किन्तु जिसमें बीती हुयी
तमाम सदियों की हड्डियाँ
परत-दर-परत
जमा होती जा रही हैं

सम्पर्क : *आर.आई.ए. / एस 2-1, शिवपुरी, पटना 800 023*

शक

□ *शरद रंजन शरद*

1

शक का कोई चेहरा नहीं
चेहरे पर होता है शक
रात के अंधेरे में
शक होता है बिलावजह
बिल्ली के बोलने की तरह

आप जितना चुप रहते हैं
वह बढ़ता है
मगर यह भी है सही
शक चुपचाप ही मरता है!

2

बहुतों ने किया
राजा ने महामंत्री पर
महामंत्री ने मंत्री पर
मंत्री ने मुलाजिम पर
मुलाजिम ने जनता पर

मुलाजिम
मंत्री
महामंत्री
और राजा तक जाते-जाते
लक्ष्य खो जाता है
सच भी संदिग्ध हो जाता है।

संपर्क : *विवेक विहार, हनुमान नगर, पटना-800 020*

✤ ✤ ✤

राग–भटियार

☐ संजीव ठाकुर

एक बिंदु टांग दिया गया है
अनंत आकाश में
(यह कोई दार्शनिक बिंदु नहीं है भाई!)
तलाश करना है।

खूब गाया कल राजन-साजन मिश्र ने
राग 'रामकली'–
''आओ प्रभात सब मिल गाएँ
नाचें, गाएं, ताल बजाएं...''
कहाँ से लाऊँ अपने जीवन में प्रभात?
और कहाँ से सीखूँ–
कत्थक, रूपक, खयाल?...

ओ, ओ मेरे प्यारे गुलाम अली!
कैसे गा दूँ तुम्हारी तरह–
'होश आया भी तो कह दूँगा मुझे होश नहीं!'...
मैं पूरी तरह होश में हूँ बंधु!
जानता हूँ–
बहुत दूर है आकाश
न कोई पुष्पक विमान
कहीं कोई इन्द्रधनुष भी नहीं
इसलिए बावजूद इसके कि

जगने लगी है
मेरी कुंडली फिर से
महसूस करने लगा हूँ
कि हां, मैं फिर जिंदा हो रहा हूँ
याद है बिल्कुल, पूरी तरह 'पद्मावत' का अंत–

''छार उठाइ लीन्हि इक मूठी।
दीन्हि उढ़ाइ पिरछिमी झूठी॥''

बहुत बार चाहा मैंने कि फेंक दूँ निकालकर
अपना हृदय, अपना मस्तिष्क, अपना स्नायुतंत्र
बिल्कुल नहीं महसूसूँ–कुछ भी नहीं, एकदम नहीं
शायद यह क्षण वैसा ही होगा–व्याकुल, मनहूस
जिसमें कभी सोचा था–
तवायफ है मेरी आरजू!

मैं चाहता हूँ एकांत
ताकि रो सकूँ चुपचाप।
सचमुच, मैं तब-तब रोता हूँ
जब-जब याद आता है
राग भटियार (गायक-जसराज)...
''...कोऽई नहीं है अ-प-ना ऽऽऽ...
...सपना!...''

सम्पर्क : *हिन्दी विभाग, टी.एन.बी. कॉलेज, भागलपुर-812 007 (बिहार)*

चार कवितायें

□ *प्रताप अनम*

1

पैर छूने भर से
चींटा,
कर देता है आक्रमण
चीर देता है मांस
आदमी
गोलियां खाकर भी
उफ नहीं करता

2

चींटों का काफिला
बिना किसी का नुकसान किये
बढ़ता है
जब कोई उसे छेड़ता है
तो वह
गुरिल्लों की तरह
टूटकर फैल जाता है
चारों ओर
जो भी मिलता है
बार कर देता है

3

चींटो को हमने
मरते नहीं
शहीद होते देखा है
मांस में धंसा देते हैं मुँह
जब भी उन्हें छुड़ाते हैं
मांस छोड़ते नहीं
टूट जाते हैं
फंसे रह जाते हैं
मात्र सिर

4

चींटे किसी भी देश के हों
सबका एक-सा धर्म होता है
वे
आदमी की तरह–
हिन्दू मुसलमान, सिख या ईसाई नहीं होते
धर्म, देश या भाषा के लिए नहीं लड़ते
वे,
जब भी लड़ते हैं
रोटी के लिए लड़ते हैं।

संपर्क : *1271, गली संगतराशान, पहाड़गंज, नई दिल्ली-110 055*

✣ ✣ ✣

डॉ० बालशौरी रेड्डी की दो कविताएं

(1)

मिट्टी में मानव भी गंध

जहां तक दृष्टि जाती है
लगता है, आकाश पृथ्वी को
आलिंगन में लिए हुए हैं।
जैसे मिट्टी में से
मिट्टी जन्मी हो।
मिट्टी में से मनुज जन्म लेता है।
मिट्टी से मन को लिए हुए आता है।
वरना मिट्टी के मानव को।
मन क़हां से प्राप्त हो।
इसीलिए शायद।
मनुज में मिट्टी की गंध है।
और मिट्टी में सर्वत्र मनुज की सुगंध है।
पर हकीकत यह है कि
भले ही मनुज बदलता हो
परंतु मिट्टी कभी बदलती नहीं
मनुज भले ही मृत्यु को प्राप्त हो जाए
पर मिट्टी कभी नहीं मरती।
मनुज भले ही कलुषित हो जाए
मिट्टी कदापि कलुषित नहीं होती।
मनुज के प्रति मिट्टी का
यह कैसा अद्‌भुत प्रेम है।
मनुज के पैरों तले ज़मीन बन कर
उसे अस्तित्व देती है,
सहारा देती है।
अंत में अपनी गोद में
आश्रय देकर चिरनिद्रा में
सुलाती है।
इसीलिए वह जन्मदात्री माता है
धरती माता है।

(2)

मैं उस दिन के इन्तजार में हूं

मैं सोचता बहुत हूं,
लिखता कम हूं।
हां, लिखता तब हूं,
जब दिल कसमसा जाता है,
मचल उठता है,
उबल पड़ता है–
तड़प उठता है।
पर–
अब लगता है
कि लिखूं ही क्यों!
जब लेखन का कोई असर न रहा।
उन पत्थर बने दिलों पर
इसीलिए–
मैं उस दिन के इंतजार में हूं।
जब लेखन की लकीर
पत्थर बने उन दिलों को कुरेदे
और–
पत्थर द्रवित हो,
पिघल उठे।
हां, इसीलिए मैं उस दिन के इंतजार में हूं
जब मेरे लेखन की कोई सार्थकता हो!
हां, इसलिए मैं उस दिन
के इन्तजार में हूं।
उस दिन के इंतजार में हूं।

संपर्क : *27 वाडिवेलुपुरम, वेस्ट मांबलमं, चेन्नै - 33*

✣ ✣ ✣

कोई और है

□ प्रो० अधिराज राजेन्द्र मिश्र

पहले मैंने सोचा खुद जिन्दगी बनाऊँगा।
अपनी जीवन नैया अपने हाथों ही चलाऊँगा॥
पर अब तो लगता है खेनेवाला कोई और है।
हम तो हैं भिखारी, देनेवाला कोई और है॥

रोई-रोई रातें बीती, हारे-हारे दिन।
बौराये बौराये बीते सारे पल-छिन॥
पर अब तो लगता है होने वाला कोई और है।
हम तो नाम के पंछी, उड़ने वाला कोई और है॥

छन्दों के मधुबन्धन टूटे, सूखे रसकोष।
शब्द-अर्थ आपस में उलझे देने लगे दोष॥
पर अब तो लगता है सिखने वाला कोई और है।
हम तो हैं 'बल'' पोथी' पढ़ने वाला कोई और है।

सूनी-सूनी राहें दिखीं उजड़े-उजड़े गांव।
घूरी-घूरी आँखें दीखीं उखड़े-उजड़े पाँव॥
पर अब तो लगता जुड़ने वाला कोई और है।
हम तो हैं सूनाघर रहने वाला कोई और है।

काँच-सरीखा टूटा सब कुछ होने का अभिमान।
घर आए पाहुन सा मन को भला लगा सम्मान॥
पर अब तो लगता है सहने वाला कोई और है।
हम तो हैं बस दरिया, बहने वाला कोई और है।

सम्पर्क : *शिमला विश्वविद्यालय, शिमला-5*

✣ ✣ ✣

ग़ज़ल

☐ कुमार नयन

अब यूँ निजात ग़म से अपने पाइए हुज़ूर।
सारे जहाँ के दर्द को अपनाइए हुज़ूर॥
पायेंगे इसमें आप भी अपना ही हाले दिल,
मेरी ग़ज़ल तो आप ज़रा गाइए हुज़ूर।
हो जब कभी भी दिल के समुन्दर को देखना,
आंखों की कश्तियों में उतर जाइए हुज़ूर।
क्यों बेचता हूं रोज़ लहू अपने जिस्म का,
इस पर जुबान मेरी न खुलवाइए हुज़ूर।
मुन्सिफ भी आपका ये अदालत भी आपकी,
मरज़ी हो जो भी फैसला करवाइए हुज़ूर।
बस्ती है एक दर्द की नज़दीक आपके,
बाहर तो अपने घर से कभी आइए हुज़ूर।
हम तो हैं हक़ परस्त सवाली नहीं कोई
रहमत की बात कह के न भुलवाइए हुज़ूर।

सम्पर्क : *ज्योति प्रकाश मेमोरियल लायब्रेरी, स्टेशन रोड, बक्सर (बिहार)–802 101*

✤ ✤ ✤

मुझे नहीं मालूम

□ बोरडे गंजू रमण

देखा है मेरे अन्तर्मन ने जब भी,

इक धुंध ही लगी है हाथ

लगता है कि है कोई गुह्य, अन्तर्गुह्य

परन्तु दृष्टि देती नहीं है साथ

मैं चीर के अन्धकार को तुझे स्पर्श करना चाहूं

फटे-मैले जीर्ण कपड़े की भान्ति

इस मन को उतारना चाहूँ

मेरा अतीत, उफ! क्यों दृष्टि में गढ़ा हुआ है

मैं नित पल क्यों नहीं नवनूतन हो जाता हूँ

एक नवजात शिशु की भान्ति

जिसको ममत्व का आगार लिए

निहारती है मां पहली बार,

हर एक बार-पहली बार

एक जीते-जागते स्वप्न के साकार होने सा

क्षण-भर लगा है ऐसा बहुत बार

कि तूने झांका है उसी पटल से वैसे ही

मुझे पल-भर, मेरे विमूढ़ मन को नहीं

मेरे अस्तित्व को निहारा है, मेरी परिस्थिति को नहीं,

परन्तु वह क्षण सहसा सरक क्यों जाता है

वह दृष्टि बदल क्यों जाती है

मुझे क्यों आभास होता है

कि वह टिक जाती है मेरे मन के विमूढ़ स्थानों पर

ऐसे जैसे करने जा रही हो उद्घोषणा

मेरे अस्तित्व को नकारने की,

वह सरका क्षण और यह उभरा आक्रोश

है इससे बड़ी कोई दुविधा

है इस दुविधा से बड़ी कोई यातना,

कि त्रास खाकर जिससे लौट जाता हूं

ढूंढने वही क्षण अन्तर्गुह्य का

और फिर रह जाता हूँ पथिक अकेला

किसी मरुस्थल का

'यहाँ जीवन है?' 'क्या मैं जीवित हूँ?'

यह कौन पुकारता है–अस्तित्व मेरा?

सच तो यही है कि–'मुझे नहीं मालूम'

संपर्क : *हज़ूरी बाग, बोहड़ी, तालाब तिल्लो, जम्मू – 180002*

जीवन

□ रजनीश गुप्ता

किसी खड्डे में पड़ गया पानी,
बहुत प्रसन्न होता है।
अब चलना नहीं उसे पड़ेगा,
पड़ा-पड़ा चैन की नींद सोएगा।

किसी पत्थर से टकराना न पड़ेगा।
किसी तूफान में उछलना न पड़ेगा।
यहाँ अपनी दुनिया होगी,
न कोई हलचल, न कोई वेग,
केवल शांति, परम शांति ॥

कौन समझाए, इस निठल्ले पानी को।
जीवन, चलने का ही तो नाम है।
रुकने का जीवन, क्लीव जिया करते हैं।
क्या पता, कहीं चलने पर यह,
किसी सागर में गिर जाए,
हो रहा हो जहाँ समुद्र मंथन,
देवों व असुरों के बीच।

किसी शिव की कृपा से,
परिवर्तित हो जाए यह अमृत में।
फिर पी कर जिसे पा लें,
समस्त देव, अमरत्व।
तब अपने को, जरूर कोसेगा यह पानी,
क्यों प्रसन्न हो रहा था मैं?
यूँ निठल्ले बैठे रहने पर!

सम्पर्क : *11-सी, शास्त्री नगर, जम्मू*

✣ ✣ ✣

अधूरापन

☐ *शेख मुहम्मद कल्याण*

तुम्हारे प्रत्येक
प्रश्न का
उत्तर ढूंढता रहा
निस्संकोच मैं
परंतु
तुम्हारी अधखुली
आंखों की भाषा
कैसे पढ़ूं मैं
तुम्हारे होंठों से
निकले अधूरे शब्द
कहां सम्पूर्ण करूं मैं
मैं तलाश कर रहा हूं
अपने अधूरे पन की
शायद मैं
स्वयं अधूरा हूं
तुम्हारे अधूरे शब्दों का
उत्तर
कहां दे सकेगा
मेरा अधूरापन
यही मात्र विवशता है
कि
मैं अपने अस्तित्व से भी
अपरिचित हूं।

संपर्क : *505, नरवाल पाईं, सतवारी, जम्मू - 180 003*

✣ ✣ ✣

गीत

□ सुनील शर्मा

भीगे पल संभाले हैं,

कुछ परतों में रुमालों की,

लौट के जब तुम आओगे, हर कतरा-कतरा चुन लेना।

सपनों में कटती हैं रातें यादों संग दिन ढल जाए
तन्हाई में मूक स्वरों से गुंगापन नग्में गाए
लौट के जब तुम आओगे ये मूक तराना सुन लेना

याद में तेरी तड़प तड़प के मुरझाए आंगन के फूल,
पिछवाड़े की बेरी वाली चिड़िया कलरव गई है भूल,
लौट के जब तुम आओगे छत के चंदा से सुन लेना

लम्हा लम्हा गुमसुम है दिन रातें सूनी सूनी हैं
बूंद बूंद है चुभन भरी बरसातें सूनी सूनी हैं
लौट के जब तुम आओगे बदरा के मुख से सुन लेना

संपर्क : *201/3 छन्नी हिम्मत, जम्मू*

आयोजन

लोक-उत्सव, 2001

19 दिसंबर से 22 दिसंबर, 2001 तक जम्मू की ऐतिहासिक मुबारक मंडी के दीवान-ए-आम में लोक-उत्सव-2001 का भव्य आयोजन किया गया। इस लोक-उत्सव में अकैडमी की ओर से ऐसे लोक-नृत्यों एवं पारंपरिक लोक-गीतों को सम्मिलित किया गया था जो समय के साथ-साथ बड़ी तेज गति से विमृत होते जा रहे हैं। लोक नृत्यों में कुइड, छज्जा-नाच, हरण-नाच और डोगरी लोक गीतों में मसम्धे (शिव यज्ञ 'गुसेंतन' में गाए जाने वाले भक्ति गीत) भाख-गीत, बारां (वीर पुरुषों सम्बन्धी लोक गाथाएं) कारकां (देश, धर्म और सत्य के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाले बलिदानी महापुरुषों सम्बन्धी लोक गाथाएं) बधावे (बच्चे के जन्म सम्बन्धी संस्कारों पर गाए जाने वाले लोक गीत) बिस्नपते (भक्ति गीत) घोड़ियां (लड़के के विवाह पर गाए जाने वाले लोक गीत) सुहाग (लड़की के विवाह के अवसर पर कन्या-पक्ष की स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले लोक-गीत), लोक गीतों को पुनर्जीवित करने के प्रयास को दर्शकों द्वारा सराहा गया। इस लोक-उत्सव में जम्मू-प्रान्त के विभिन्न भागों से आई लोक-पार्टियों ने भाग लेकर अपनी उत्कृष्ट कला का प्रदर्शन किया। लोक-उत्सव-2001 का शुभारंभ राज्य अकैडमी के सचित श्री बलवंत ठाकुर ने दीप प्रज्वलित कर के किया।

कठपुतली नाच

7 जनवरी, 2002 को अकैडमी द्वारा लुप्त हो रही भारत की लोक कला 'कठपुतली' का बच्चों से परिचय कराने के उद्देश्य से कठपुतली नाच का आयोजन किया। कार्य-क्रम में जम्मू नगर के स्कूलों से प्राइमरी स्तर के बच्चों को आमंत्रित किया गया था।

अभिनय कार्यशाला	10 जनवरी, 2002 को उत्तर क्षेत्रीय सांस्कृति केन्द्र पटियाला के सौजन्य से अभिनय कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला का उद्घाटन अकैडमी के सचिव श्री बलवंत ठाकुर ने किया। सप्ताह भर चलने वाली इस कार्यशाला का संचालन सुप्रसिद्ध नाट्य विशेषज्ञ श्री हरीश खन्ना ने किया।
कहानी उत्सव-2002	14 जनवरी से 20 जनवरी, 2002 तक कहानी-उत्सव, 2002 का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का उद्घाटन पद्मश्री प्रो० रामनाथ शास्त्री ने किया। कहानी-उत्सव में राज्य की विभिन्न भाषाओं के कहानीकारों को आमंत्रित किया गया था। इसमें उर्दू, कश्मीरी, डोगरी, हिन्दी, पंजाबी, गोजरी, पहाड़ी और बल्ती में 'आज की कहानी' शीर्षक से प्रत्येक भाषा की कहानी पर आलेख और तदुपरान्त पांच-पांच कहानियां पढ़ी गईं।
गणतन्त्र दिवस	28 जनवरी, 2002 को गणतन्त्र दिवस के उपलक्ष्य में अखिल भारतीय उर्दू कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। प्रधानता उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि श्री निदा फ़ाज़ली ने की।
वार्षिक नाट्योत्सव	29 जनवरी से 2 फरवरी, 2002 तक वार्षिक नाट्योत्सव का आयोजन किया गया। इस में निम्नलिखित नाटकों का मंचन किया गया।

29.01.2002	रंगशाला-पगला घोड़ा- हिन्दी
30.01.2002	अनामिका आर्टस-लीक से परे-हिन्दी
31.01.2002	नटशाला-पंज-कल्याणी-डोगरी
01.02.2002	समूह थियेटर-इक होर ओइडीपस-डोगरी
02.02.2002	थियेटर मित्र- एक और एक ग्यारह - हिन्दी

Regd No. 28871/76 February-March 2002
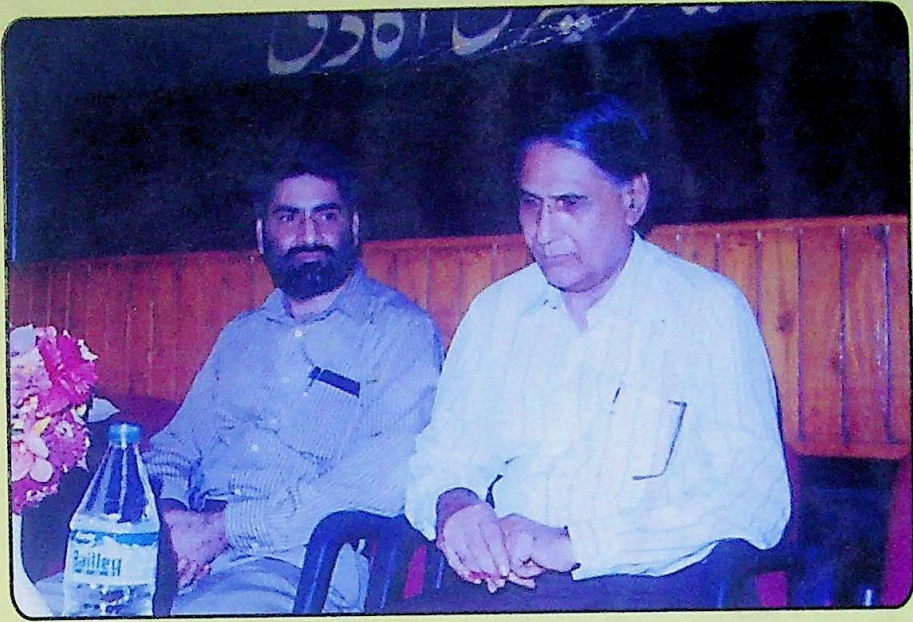
'लेखक से भेंट' कार्यक्रम में हिन्दी और डोगरी के राष्ट्र ख्याति प्राप्त लेखक श्री वेद राही और राज्य अकैडमी के सचिव श्री बलवंत ठाकुर

अकैडमी द्वारा आयोजित 'कहानी उत्सव' में हिन्दी की सुप्रसिद्ध कहानीकार प्रो० किरण बक्शी कहानी प्रस्तुत करते हुए।

Published by the Secretary on behalf of J&K Academy of Art, Culture and Languages, Jammu and Printed at Rohini Printers, Kot Kishan Chand, Jalandhar City (Punjab)